कबीर-ग्रंथावली का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की डी० फ़िल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध-

निर्देशक :

डॉ० माता बदल जायसवाल

[अवकाश प्राप्त] प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्ता :

रामविजय सिंह यादव

हिन्दी विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

अक्टूबर १६८५

: प्राक्कथन :

भक्तिकाल के आदि में आविर्भूत होने के कारण महाकवि कबीर को भक्तिकाल का प्रवर्तक स्वीकार किया जाता है । उन्होंने मानवता की जो अमर ज्योति जलायी, वह सदैव लोगों का दिशा- निर्देश करती रहेगी । भक्तिकाल में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण हिन्दी-जगत में कबीर का कोई सानी नहीं है ।

अब तक कबीर से सम्बन्धित जो कार्य हुए हैं, उन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है -1. पाठ सम्पादन सम्बन्धी 2. काव्य समीक्षा सम्बन्धी 3. शोध कार्य ।

वैज्ञानिक पाठ सम्पादन की दृष्टि से जो कार्य हुए हैं, उनका विवरण अधोलिखित है -

1. कबीर वचनावली- सं0 अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", ना0प्र0स0, काशी, सन् 1916 ई0
2. कबीर ग्रंथावली- सं0 श्यामसुन्दर दास, ना0प्र0स0, काशी, सन् 1928 ई0
3. संत कबीर- सं0 डॉ0 रामकुमार वर्मा, साहित्य-भवन लि0, प्रयाग, सन् 1943 ई0
4. कबीर ग्रंथावली- सं0 डॉ0 पारसनाथ तिवारी, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग, सन् 1961 ई0
5. कबीर ग्रंथावली- सं0 डॉ0 माताप्रसाद गुप्त, प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, 1969 ई0

6• कबीर बीजक- सं0 डॉ0 शुकदेव सिंह- प्रस्तुत कर्ता, डॉ0 शुकदेवसिंह, नीलाभ प्रकाशन -5, खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन् 1971।

7• रमैनी- सं0 डॉ0 जयदेव सिंह; वासुदेवसिंह विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सन् 1974

पाठ सम्पादन से सम्बन्धित सर्वश्रेष्ठ कार्य डॉ0 पारसनाथ तिवारी का है। उन्होंने पाठ-सम्पादन में वैज्ञानिक दृष्टि अपनाकर हिन्दी-जगत को अमूल्य रत्न प्रदान किया। किसी भी साहित्यकार का बिना उसका प्रामाणिक कृतियों के सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। अप्रमाणिक सामग्री के रहने पर कवि के साथ अन्याय होने का भय रहता है; इसीलिए प्रस्तुत विषय के प्रतिपादन हेतु डॉ0 पारसनाथ तिवारी द्वारा संपादित "कबीर-ग्रंथावली" को ही आधार बनाया गया है तथा विषय-विवेचन में इसी से छन्द उद्धृत किये गये हैं।

कबीर पर दूसरी दिशा में कार्य काव्य समीक्षा से सम्बन्धित हैं; जिनका विवरण निम्नांकित है -

1• उत्तर भारत की संत-परम्परा- परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, प्रयाग, सं0 2008 वि0 ।

2• कबीर- डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग, बंबई, द्वि0 सं0, सन् 1947 ई0।

3• कबीर एंड दि कबीरपंथ-रे0जी0एच0 वेस्टकट, सुशील गुप्ता (इंडिया) लि0, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, सन् 1953 ई0 ।

4• कबीर एंड हिज़ फ़ॉलवर्स -डॉ0 एफ़0 ई0 के, असोसिएशन प्रेस, कलकत्ता, 1931 ई0 ।

5• कबीर का रहस्यवाद -डॉ0 रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन लि0, प्रयाग, सं0 1988 वि0 ।

6• कबीरदास- नरोत्तमस्वामी, हिंदी-भवन, लाहौर, सं0 1997 वि0

7• कबीर-साहित्य की परख- परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, प्रयाग, सं0 2011 वि0 ।

8• कबीर-साहित्य का अध्ययन - श्री पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव, बनारस, 2008 वि0 ।

9• कबीर-साहित्य की भूमिका- डॉ0 रामरतन भटनागर, प्रयाग, 2007 वि0 ।

10• महात्मा कबीर- श्री हरिहर निवास द्विवेदी, सूरी ब्रदर्स, लाहौर, सं0 1993 वि0 ।

11• कबीर और कबीरपंथ- केदारनाथ द्विवेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् 1965 ई0

12• हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय: पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, अनु0 परशुराम चतुर्वेदी, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 2000 वि0 ।

13· कबीरदास: डॉ0 कान्तिकुमार, किताब घर, ग्वालियर,
संस्करण 1972 ई0

14· कबीर मीमांसा : डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, लोक भारती प्रकाशन,
15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1
प्रथम संस्करण, सन् 1976 ई0

15· कबीर: एक अनुशीलन : डॉ0 रामकुमार वर्मा, साहित्य-भवन
प्रा0 लि0 इलाहाबाद -211003;
प्रथम संस्करण : सन् 1983

उपर्युक्त समीक्षा सम्बन्धी कार्यों में कबीर के जीवनवृत्त, उनकी प्रामाणिक कृतियाँ, रहस्यवाद, भक्ति साधना, दार्शनिक विचार, समाज-दर्शन, कवि-रूप, व्यक्तित्व-विश्लेषण, आदि विभिन्न पहलुओं पर विचार हुआ है ।

कबीर पर तीसरी दिशा में शोध-कार्य हुए हैं, जिनकी सूची अग्रांकित है -

1· कबीर की विचारधारा, जी0एस0 त्रिगुणायत, आगरा, 1951
(हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि" शीर्षक से प्रकाशित, साहित्य निकेतन, कानपुर, 1961)

2· कबीर एवं वेमना का तुलनात्मक अध्ययन,
कोम्मि वेंकटेश्वर रेड्डी, लखनऊ 1961

3· ए क्रिटिकल स्टडी आफ दि फिलासफिकल व्यूज आफ कबीरदास, रामजी लाल सहायक, लखनऊ, 1960 (`"कबीर-दर्शन"` शीर्षक से प्रकाशित लखनऊ, विश्वविद्यालय, 1962)

4· कबीर और कबीरपंथ : तुलनात्मक अध्ययन, केदारनाथ दूबे, आगरा, 1962 (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1965)

5· कबीर की भाषा, महेन्द्र कुमार, दिल्ली, 1966 (शब्दकार, दिल्ली, 1969)

6· कबीर की भाषा का भाषाशास्त्रीय अध्ययन, राधेश्याम शर्मा, आगरा, 1967

7· कबीर और मायावाद, रामनिवास, उसमानिया, 1968

8· कबीर के दर्शन और काव्य के स्रोत, सीताराम सिंह, पटना, 1967

9· कबीर ग्रन्थावली की भाषा, बिन्दुमाधव मिश्र, का०हि०, 1964

10· कबीर-निदर्शन, सरनामसिंह शर्मा, राजस्थान, 1966 (डी०लिट०) (भारतीय शोध संस्थान, राजस्थान, 1969)

11· कबीर साहित्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली, भगीरथ यादव, भागलपुर; 1967

12· कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, आशाप्रसाद त्रिपाठी, सागर, 1969

13· कबीरदास की शब्दावली का सांस्कृतिक अध्ययन,
माधुरी पुरी, इलाहाबाद, 1969

14· कबीर के काव्य पर समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव,
रामनारायण सिंह, पटना, 1969

15· कबीरदासकालीन भारतीय समाज, पोद्दार अरुण शास्त्री,
पटना, 1964·

16· ज्ञानेश्वर और कबीर के साहित्य में नाथ सम्प्रदाय का स्वरूप:
एक तुलनात्मक अध्ययन, द०आ० भिंगारकर, पूना, 1966

17· बीजक का भाषाशास्त्रीय अध्ययन, शुकदेवसिंह, बिहार, 1966

18· लल्लेश्वरी तथा कबीर के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन,
मोहिनी कौल, कश्मीर, 1966

19· संत कबीर की योग साधना और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि,
ओमप्रकाश गर्ग, पंजाब, 1965

20· कबीर और दादू के साधनात्मक सिद्धान्तों का तुलनात्मक
अध्ययन, देवनाथ, का०हि०, 1972

21· कबीर-काव्य का भाषावैज्ञानिक अध्ययन, भगवतप्रसाद दुबे,
इलाहाबाद, 1966·
(नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1969)

22· कबीर-काव्य में प्रतीक-विधान, ब्रह्माजीत गौतम, विक्रम,
1974

23. कबीर के काव्य-रूपों का आलोचनात्मक अध्ययन,
नजीर मुहम्मद, अलीगढ़, 1963
(भारती प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1971)

24. कबीर ग्रन्थावली में प्रेमभक्ति, कुसुम श्रीवास्तव, पंजाब, 1970

25. कबीरदास की भक्ति- भावना, विलियम देयर, दिल्ली,
1973

26. कबीर मत पर वैष्णव मत का प्रभाव, राम कृपाल मिश्र,
बिहार, 1972

27. तुकाराम एवं कबीर का तुलनात्मक अध्ययन,
रमेश सेठ, आगरा, 1973

28. तिरुवल्लुर और कबीर का तुलनात्मक अध्ययन, रवीन्द्रकुमार सेठ,
दिल्ली. 1971 (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972)

29. प्रस्थानत्रयी और कबीर, चन्द्राहीरनन्दानी, उसमानिया,
1972

30. महात्मा कबीर एवं महात्मा गांधी के विचारों का तुलनात्मक
अध्ययन, रामजी लाल सहायक, लखनऊ 1970 (डी०लिट०)

31. मुख्यतया कबीर के सन्दर्भ में गोरखनाथ की विचारधारा का हिन्दी
निर्गुण साहित्य पर प्रभाव, वेदप्रकाश शर्मा "अग्नि",
पंजाब, 1970

32. संत कबीर और रैदास का तुलनात्मक अध्ययन; वन्ददेव राय,
काशी विद्यापीठ, 1972

33. समकालीन भारतीय समाज और कबीर का सामाजिक दर्शन, प्रह्लाद मौर्य, पूना, 1972

34. सौन्दर्य और उदात्त के सिद्धान्तों के आधार पर कबीर के काव्य का मूल्यांकन, ब्रह्मदत्त, पंजाब, 1973

35. कबीर की भाषा: डॉ0 माताबदल जायसवाल, कैलाश ब्रदर्स, इलाहाबाद, सन् 1964

शोध सम्बन्धी कार्यों में कबीर की भाषा, भक्ति, तुलनात्मक अध्ययन, सांस्कृतिक अध्ययन, भाषाशास्त्रीय अध्ययन, प्रतीक-विधान, प्रेमभक्ति आदि विभिन्न पहलुओं पर विचार हुआ है ।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि यद्यपि कबीर पर विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से विवेचन किया है ; किन्तु उनके काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, जिसमें कवि का महान व्यक्तित्व एवं काव्य-सौन्दर्य निहित है, अभी तक यह स्वतंत्र विवेचन का विषय नहीं बन पाया है, यह क्षेत्र सर्वथा अछूता ही है । इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध-प्रबंध का अपना मौलिक स्वरूप है और इस अभाव की पूर्ति में एक विनम्र प्रयास है । कबीर की शैली का सांगोपांग वैज्ञानिक विवेचन ही प्रस्तुत शोध-प्रबंध का प्रतिपाद्य है ।

विवेचन की दृष्टि से सम्पूर्ण शोध-प्रबंध आठ अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय में शैली को प्रभावित करने वाले तत्वों के रूप में कवि-युग और उसके व्यक्तित्व पर दृष्टिपात किया गया है; क्योंकि युग व्यक्तित्व एवं शैली एक दूसरे के सापेक्ष्य होते हैं । द्वितीय अध्याय में शैली के आधार तत्व के रूप में कबीर की प्रामाणिक रचनाओं एवं

काव्यभाषा पर प्रकाश डाला गया है ; तृतीय अध्याय में कवि की चयन-क्षमता, चतुर्थ अध्याय में कवि के सर्जनात्मक विचलन, पंचम् अध्याय में अप्रस्तुत-विधान के सौन्दर्य, षष्ठम् अध्याय में समानान्तरता के द्वारा उत्पन्न संगीतात्मकता एवं संतुलन द्योतक संगीत, सप्तम् अध्याय में ध्वनियों का भावों के साथ सम्बद्धता, लयात्मकता एवं संगीतात्मकता और अन्तिम अध्याय में सम्पूर्ण विवेचन के सार तत्व पर प्रकाश डाला गया है ।

इस प्रयास में मैं श्रद्धेय गुरुवर डॉ० मूलशंकर शर्मा; वरिष्ठ प्रवक्ता, के०बा० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मीरजापुर के प्रति श्रद्धानत हूँ, जिन्होंने मुझे क, ख, ग ही नहीं, अपितु अ, आ, इ भी सिखाया तथा इस कार्य को उन्हीं की प्रेरणा का प्रतिफल समझता हूँ । मैं जो कुछ भी कर सका हूँ, यह उन्हीं की अनुकम्पा, सहृदयता एवं आशीर्वाद का परिणाम है । मैं जब भी उनके पास अपनी कठिनाइयों को लेकर पहुँचा, उन्होंने अपनी निजी परेशानियों एवं व्यस्तता के बावजूद बड़े ही धैर्य एवं सहृदयता से मेरी कठिनाइयों को सुना एवं निवारण का मार्ग-निर्देशन किया । मैं उनकी महानता को शब्दों में न बाँधकर मौन रहना ही श्रेयस्कर समझता हूँ ।

परम आदरणीय, सरलता, सौजन्य, सौम्यता एवं विद्वता की साक्षात प्रतिमूर्ति डॉ० माताबदल जायसवाल के प्रति श्रद्धा से सिर झुक जाता है, जिन्होंने अपने कुशल निर्देशन एवं शिष्य-वत्सलता से मुझे उपकृत किया है । उन्होंने मेरे अज्ञान आवरण को हटाकर मेरा मार्ग प्रशस्त किया, परिणामतः यह शोध प्रबन्ध रूपायित हो सका है । उन्होंने अपने व्यस्ततम क्षणों में भी मेरे शोध-कार्य को पढ़ा तथा यथास्थान संशोधित कर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की । इसके लिए मैं उनके प्रति साभार श्रद्धानत हूँ ।

मैं अपने अग्रज श्री सूबेदार सिंह यादव (एम०ए०, बी०एड०), सखा श्री रामनगीना सिंह यादव, अग्रजतुल्य श्री रामशरण यादव, श्री मुन्नीलाल मौर्य (केन्द्रीय तार कार्यालय, इलाहाबाद) का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य को पूरा करने के लिए बराबर प्रोत्साहित किया तथा कार्य की प्रगति जानने के लिए सदैव उत्सुकता व्यक्त की ।

भाषाविज्ञान के मूर्धन्य विद्वान डॉ० विद्यानिवास मिश्र एवं डॉ० भोलानाथ तिवारी के प्रति मैं सदैव नतमस्तक एवं चिरऋणी रहूँगा, जिनकी कृतियों ने मुझे विषय-प्रतिपादन- पद्धति की आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान की । इन द्वय विद्वानों की ऋण-गरिमा को लेखनी द्वारा आबद्ध नहीं किया जा सकता ।

अन्त में, मैं अपनी धर्मपत्नी के प्रति भी दो शब्द लिखना अपना सुखद कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने सदैव मुझे गृह-जंजाल से मुक्त रखा तथा इस कार्य को पूरा करने में अपना पूरा सहयोग प्रदान किया। इस सहयोग की गरिमा और भी बढ़ गयी है; क्योंकि वे अल्प शिक्षित होते हुए भी इस कार्य के महत्व को समझीं ही नहीं, अपितु इसे शीघ्र पूरा करने के लिए मुझे प्रोत्साहित करती रहीं । मैं अपने और उनके बीच आभार की दिवाल नहीं खड़ा करना चाहता, अतः मौन ही उचित।

शोध का विषय शास्त्रीय एवं गम्भीर है; फिर भी मैंने भाषा के रूप को सरलतम् बनाने का प्रयत्न किया है । शोध-प्रबंध को त्रुटिरहित बनाने के लिए यथामति चेष्टा की गयी है ; इसके उपरान्त भी अगर कोई त्रुटि संशोधित करने में रह गयी हो तो उसे मनीषी विद्वान उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे ।

रामविजय सिंह यादव

रामविजय सिंह यादव,
हिन्दी विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग ।

दिनांक- 27-10-1985

: संकेत-विवृति:

*

क०ग्रं०	=	कबीर-ग्रंथावली, संपादक- डॉ० पारसनाथ तिवारी
प०	=	पद
सा०	=	साखी
र०	=	रमैनी
चौं	=	चौंतीसी
पृ०	=	पृष्ठ

:*:

0
000
00000
000
0

"कबीर-ग्रंथावली का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन"

: अनुक्रमणिका :

*

क- प्राक्कथन ख- संकेत-विवृति ग- अनुक्रमणिका घ - प्रवेशक

पृष्ठ संख्या

प्रवेशक - 1— 3

अध्याय-1

कबीर की शैली के प्रेरक तत्व - 4 — 65

क- कबीर युगीन संस्कृति

ख- कबीर का जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व

अध्याय-2

कबीर की शैली के आधार तत्व- 66 — 107

क- कबीर का कृतित्व ।

कबीर की रचनाएं, रचनाओं की प्रामाणिकता ।

ख- कबीर की काव्यभाषा ।

काव्यभाषा का विवेचन तथा कबीर की काव्यभाषा का स्वरूप ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय-3

कबीर-काव्य में चयन - 108—130

ध्वनि-चयन, शब्द-चयन, रूप-चयन, वाक्य-चयन, मुहावरा-चयन, लोकोक्ति-चयन ।

अध्याय-4

कबीर-काव्य में विचलन - 131—143

शब्द-विचलन-संज्ञा-विचलन, क्रिया-विचलन, वाग्भाग-विचलन, मानक-विचलन, क्रम-विचलन, सहप्रयोग-विचलन ।

अध्याय-5

कबीर-काव्य में अप्रस्तुत-विधान - 144—160

क्रिया- रूप में, क्रियाविशेषण-रूप में, अलंकार-रूप में, मानवीकरण-रूप में, अन्योक्ति-रूप में, प्रतीक-रूप में, मुहावरा-रूप में ।

अध्याय-6

कबीर-काव्य में समानांतरता - 161—186

समतामूलक समानांतरता, विरोधमूलक समानांतरता, ध्वनीय समानांतरता, शब्दीय समानांतरता, रूपीय समानांतरता, वाक्यस्तरीय समानांतरता, अर्थीय समानांतरता, प्रोक्तिस्तरीय समानांतरता ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय-7

कबीर-काव्य में ध्वनीय शैलीवैज्ञानिक अध्ययन - 187 — 210

ध्वनियों का प्रभाव-जनित अर्थ,

ध्वनि-विचलन का व्यंजक प्रयोग ।

अध्याय-8

उपसंहार - 211 — 217

परिशिष्ट

(क) आधार ग्रंथ ।

(ख) सहायक ग्रंथ ।

:0:

प्रवेशक

*

युग, व्यक्तित्व एवं शैली एक दूसरे के सापेक्ष्य हैं। किसी भी साहित्यकार की रचना को देखकर उसके युग एवं व्यक्तित्व का सहज आकलन किया जा सकता है। युग एवं व्यक्तित्व परस्पर प्रभावित होते रहते हैं और इन्हीं से शैली प्रभावित होती है। अस्तु, "कबीर-ग्रंथावली का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन" प्रस्तुत करने के लिए सर्वप्रथम शैली को प्रभावित करने वाले तत्वों में कबीर-व्यक्तित्व एवं उनके युग का विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है।

किसी साहित्यकार की रचना को देखकर उसके व्यक्तित्व का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है; क्योंकि साहित्यकार का व्यक्तित्व उसकी शैली को प्रभावित करता है। उसका जैसा व्यक्तित्व होगा, उसी के अनुरूप उसकी अभिव्यंजना पद्धति भी होगी। प्रसिद्ध विद्वान बफो ने शायद इसी ओर इंगित करते हुए कहा है -" शैली स्वयं व्यक्ति है" [1*] अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपनी शैली में प्रतिबिम्बित होता है। पश्चिमी विद्वानों में ददले,[2*] ब्राउन,[3*] जानसन [4*] एवं शेरन [5*] ने भी व्यक्तित्व एवं शैली की अभिन्नता को स्वीकार किया है।

1-* डिक्शनरी आफ वर्ड लिटरेचर, शिप्लाय, पृ० 398

2-* माध्यम, संघटक तथा संरचना में व्यक्त कलाकार का व्यक्तित्व ही शैली है -ददले

3-* लेखक की शैली उसकी उतनी ही अपनी होती है, जितनी उसकी अँगुली-छाप- ब्राउन

4-* हर व्यक्ति की अपनी शैली होती है। -डॉ० जानसन

5-* शैली का अर्थ है कलात्मक अभिव्यक्ति में व्यक्तित्व की विद्यमानता।
- शेरन

वस्तुत: शैली और व्यक्तित्व के सम्बन्ध को नकारा नहीं जा सकता है । सभी साहित्यकारों का अपना एक दूसरे से अलग व्यक्तित्व होता है । कबीरदास के व्यक्तित्व की अनगढ़ता एवं प्रखरता, केशव के व्यक्तित्व की कृत्रिमता, निराला के व्यक्तित्व की अनगढ़ता एवं पौरुषता, पन्त जी के व्यक्तित्व की सुकुमारता एवं कोमलता, जैनेन्द्र के व्यक्तित्व की जटिलता एवं प्रेमचन्द के व्यक्तित्व की सहजता के दर्शन उनकी रचनाओं में मिलते हैं । स्पष्ट है कि इन साहित्यकारों ने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप ही शैली अपनायी है । कुछ साहित्यकार ऐसे भी होते हैं जिनका व्यक्तित्व बहुत स्पष्ट नहीं होता, उनकी शैली में भी कोई स्पष्ट विशेषता नहीं मिलती । ऐसी स्थिति में उनके व्यक्तित्व के बारे में दो-टूक बातें नहीं कही जा सकती हैं ।

साहित्यकार अपनी रुचि एवं प्रकृति के अनुसार — भाषा का चयन करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर भाषा के स्वीकृत रूप से विचलन करता है । शैली के दो प्रमुख आधार "चयन" और "विचलन" प्राय: साहित्यकार के व्यक्तित्व से सम्बद्ध होते हैं ।
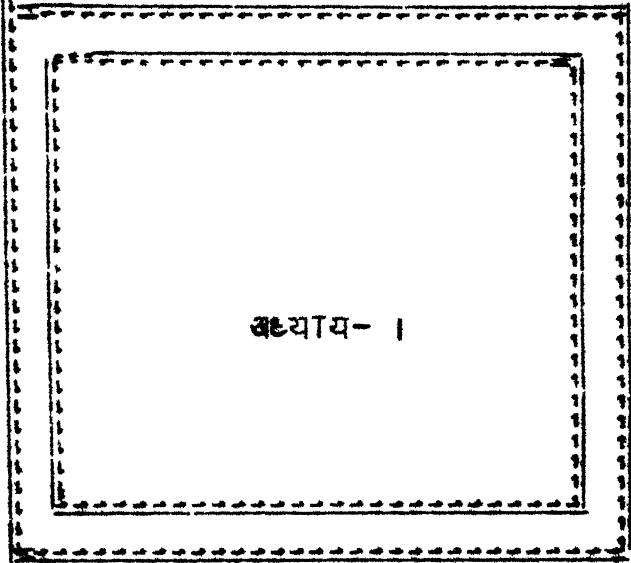
साहित्यकार अपने युग के समाज का प्रतिनिधि होता है; क्योंकि वह अपने साहित्य के माध्यम से जनता की आवाज को बुलन्द करता है । वह जनता के संचित चित्तवृत्तियों का उद्घाटन करता है। अर्थात् साहित्य जनता की संचित चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब होता है। जनता की चित्तवृत्तियों में समयानुसार परिवर्तन होता रहता है । इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता है । जनता की चित्तवृत्तियाँ बहुत कुछ तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं ।

साहित्य समाज का दर्पण होता है । किसी भी समय के समाज का सही मूल्यांकन करने के लिए तत्कालीन साहित्य का अनुशीलन आवश्यक है । अत: साहित्यकार का व्यक्तित्व एवं युग एक दूसरे के अन्योन्याश्रित हैं । साहित्यकार युग को प्रभावित करता है तथा खुद वह तत्कालीन परिस्थितियों एवं वातावरण से प्रभावित होता है । कोई भी साहित्यकार शून्य में रचना नहीं करता । वह समाज की समस्याओं, भावनाओं एवं विचारों को लेकर अपने साहित्य की श्रृंखला तैयार करता है । वह समाज का सजग प्रहरी होता है । बाबू गुलाब राय के शब्दों में "कवि या लेखक अपने समय का प्रतिनिधि होता है ।" मैथ्यू अर्नोल्ड 1* ने यह प्रतिपादित किया है कि युग एवं साहित्यकार परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं ।

कबीर-साहित्य में तत्कालीन समाज का सही चित्रण मिलता है । कबीर अपने काल की समस्याओं के प्रति कितने जागरूक थे, इसका पता उनकी रचनाओं के अध्ययन से लगता है । कवि चाहकर भी अपने युग की समस्याओं की अनदेखी एवं उपेक्षा नहीं कर सकता । अगर कहीं भी उसके चिंतन में बिखराव व टूटन आई तो उसका साहित्य कालजीवी नहीं हो सकता ।

अस्तु, आलोच्य विषय "कबीर-ग्रंथावली का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन" के लिए अपेक्षित है कि शैली के परिप्रेक्ष्य में कबीर की रचनाओं के आधार पर तदयुगीन परिस्थितियों एवं उनके व्यक्तित्व के सन्दर्भ में शैलीवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाय ।

1-* एसेज इन क्रीटिसिज्म: मैथ्यू अरनोल्ड, पृ0 43

: --*-- :

अध्याय- 1

कबीर की शैली के प्रेरक तत्व

क- कबीर युगीन संस्कृति

ख- कबीर का जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व

***

क- कबीर युगीन संस्कृति

कबीर के युग का तात्पर्य कबीर के ऐतिहासिक काल (सन् 1398-1518ई0) से है । कबीर का आविर्भाव संवत् 1455 और मृत्यु संवत् 1575 मानी जाती है । इस प्रकार कबीर का समय 120 वर्षों का रहा । हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह काल पूर्वमध्य-काल या भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है । भारतीय इतिहास में यह समय अत्यन्त उथल-पुथल एवं संक्रान्ति का रहा है । राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं अन्य कलाओं की दृष्टि से यह समय संक्रमण का था । ऐतिहासिक दृष्टि से यह घोर निराशा का काल था । चारों तरफ लूटपाट एवं अराजकता का बोलबाला था । साधारण जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी । ऐसे समय में भक्त कवियों ने समाज-जागरण का कार्य किया । उन्होंने समाज में व्याप्त निराशा के बादल को छाँटकर आशा की किरण का संचार किया और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शोषित एवं प्रताड़ित मानव का सही चित्र प्रस्तुत किया एवं मानव-कल्याण की राह बतायी । इन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों से साहित्य एवं शैली का प्रभावित होना स्वाभाविक ही था ।

राजनैतिक परिस्थिति

जिस समय कबीरदास धार्मिक-सामाजिक कुरीतियों पर

सिकन्दर लोदी के अत्याचारों का वर्णन करते हुए टिटस ने लिखा है कि इसलाम धर्म के प्रचार में उसका उत्साह इतना अधिक था कि उसने एक-एक दिन में 1500 हिन्दुओं तक की हत्या करवायी थी[2*]।

राजसत्ता के परिवर्तनों से जनता की आर्थिक स्थिति पर कोई असर नहीं पड़ता था। इसीलिए जनता इस ओर प्राय: उदासीन थी। शासक युद्धों में पड़ने वाले सारे खर्च का भार निरीह जनता पर डाल देते थे तथा गरीब जनता से धन की वसूली करके राजकीय राजस्व की पूर्ति करते थे। इस अन्यायपूर्ण जुए को ढोने के अलावा जनता के पास और कोई विकल्प न था। शासकों के वैभव-विलास के लिए भी राजस्व की वसूली की जाती थी। इस प्रकार किसान अपनी खून-पसीने की कमाई का अधिकांश भाग राजकोष में ही जमा कर देता था। तथा कभी-कभी पड़ने वाले दुर्भिक्ष से उसकी हालत और भी दयनीय हो जाती थी। इस समय केवल व्यापारी और जागीरदार ही सुखी थे।

राजनीतिक परिस्थिति का साहित्य एवं शैली पर प्रभाव -

राजनीतिक परिस्थिति का प्रभाव समाज व जन-जीवन पर पड़ता है। कबीरदास इस परिस्थिति से पूरी तरह प्रभावित थे। वे तत्वदर्शी महात्मा थे। इसीलिए उन्होंने इस राजनीतिक प्रपंच को देखकर संसार की क्षणभंगुरता का वर्णन किया ; उदाहरणार्थ -

कबीर नौबति आपनी, दिन दस लेहु बजाइ।
यहु पुर पट्टन यहु गली, बहुरि न देखहु आइ।। [1**]

1-** क०ग्रं०, सा० 15-3 2-* टिटस-इंडियन इसलाम, पृ० 11-12

कबीर गरबु न कीजिये, चाँम लपेटे हाड़ ।
हेवर ऊपर छत्र तर, ते भी देबा गाड़ ।। [1*]

कबीर गरबु न कीजिये, देही देखि सुरंग ।
आजु काल्हि तजि जाहुगे, ज्यों काचुरी भुवंग ।।[2*]

कहा नर गरबसि थोरी बात ।
मन दस नाज टका दस गाँठी ऐंड़ौ टेढ़ौ जात ।।
बहुत प्रताप गाँउ सौ पाए दुइ लख टका बरात ।
दिवस चारि की करहु साहिबी जैसे बनहर पात ।।
नाँ कोऊ ले आयौ यहु धन नाँ कोऊ ले जात ।।
रावन हूं तैं अधिक छत्रपति खिन महिं गए बिलात ।। [3*]

भाई रे अनीं लड़ै सोई सूरा ।
दोइ दल बिचि खेलै पूरा ।। [4*]

उद्धृत चार छन्दों में कबीर ने सांसारिक वैभव की निःसारता का वर्णन किया है । तीसरे छन्द में उन्होंने शासक वर्ग की तुलना सर्प से करके बड़ा ही सटीक एवं तीखा व्यंग्य किया है । सर्प का धर्म विष है, जो केवल दंशन करना जानता है । पाँचवें छन्द में वे तत्कालीन शूर वीरों को सम्बोधित कर कहते हैं कि तीर, तोपों से लड़ना शौर्य नहीं, वास्तविक शूर वह है जो माया के बन्धनों से मुक्त होकर -

---

1-* कo ग्रंo, साo 15-24

2-* कo ग्रंo, साo 15-24

3-* कo ग्रंo, पo 73

4-* कo ग्रंo, पo 59

आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर हो । तत्कालीन राजनीति की हिंसापूर्ण प्रवृत्ति के कारण ही कबीर का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ ।

तत्कालीन राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के प्रति विद्वेष की भावना रखते थे तथा मुसलमान हिन्दुओं पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे । इसीलिए कबीर ने अपने साहित्य के माध्यम से हिन्दू, मुसलमान (राम, रहीम) को एक बताया तथा विश्व धर्म की कल्पना की । वे मुसलमान शासकों के अत्याचार से स्वयं भी नहीं बच पाए थे ; छन्द अधोलिखित है -

आहि मेरे ठाकुर तुम्हरा जोर ।
काजी बकिबो हस्ती तोर ।।
भुजा बाँधि भिला (भेला ।) करि डारयो ।हस्ती कूप मुंड नहिं मारयो ।।
भाग्यो हस्ती चीसा मारी।या मूरति की हौं बलिहारी ।।
रे महावत तुझु डारउं काटि।इसहिं तुरावहु घालहु सोटि ।।
हस्ती न तोरे धरे धियान।वाके हिरदे बसे भगवान ।।
क्या अपराध संत है कीन्हो ।बाँधि पोटि कुंजर कौं दीन्हो ।।
कुंजर पोट बहु बंदन करे ।अजहुं न सूझे काजी अंधरे ।।
तीनि बर पतियारा लीन्हो ।मन कठोर अजहुं न पतीनो ।।
कहे कबीर हमरा गोबिंद ।चौथे पद महिं जन की जिंद ।। [1*]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का प्रभाव कबीर के साहित्य एवं शैली पर निश्चित रूप से पड़ा है । उन्होंने अपने कथ्य के अनुरूप ही सरल, सीधी, कभी प्रश्नात्मक शैली का प्रयोग किया है ।

1-* कo ग्रंo, पo 23.

सामाजिक परिस्थिति

कबीर के समय में समाज में बहुत विसंगति विद्यमान थी । भारतीय समाज वर्ण-व्यवस्था पर आधारित था । इस व्यवस्था में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था तथा अन्य तथाकथित अछूत जातियों को हेय समझा जाता था । समाज में छुआछूत, भेद-भाव, उँच-नीच की भावना व्याप्त थी । दूसरी ओर मुसलमान शासक जनता पर तरह-तरह के जुल्म ढाह रहे थे । उन्हें अपने विजेता होने का गर्व था तथा यहाँ की विजित जनता की दशा से ऐसा लगता था मानों वह अपने जीवन से हार मान चुकी हो । उसमें निराशा की भावना परिव्याप्त थी । मुसलमानों के अत्याचारों के परिणामस्वरूप ब्राह्मण-वादी व्यवस्था और भी अधिक दृढ़ हो गयी, जिससे तथाकथित निम्न समझी जाने वाली जातियों की स्थिति और भी दयनीय हो गयी - एक तरफ तो मुसलमान शासकों का जुल्म तथा दूसरी तरफ अपने ही समाज द्वारा तिरस्कार एवं अपमान । अस्तु, इन जातियों ने कोई और विकल्प न देखकर इस्लाम धर्म ग्रहण करना शुरू कर दिया-कभी-कभी सामाजिक विसंगति से और कभी-कभी धन-प्रलोभन से ।

इस पूरी सामाजिक संरचना में एक ओर जातिवाद की कट्टरता और धार्मिकता का समर्थन और कर्मकाण्डों का लम्बा विस्तार, वहीं दूसरी ओर उपेक्षित समाज का हाहाकार करता हुआ वर्ग भी है, जो अपने अस्तित्व के लिए संघर्षशील दिखायी पड़ता है ।

सामाजिक परिस्थिति का साहित्य एवं शैली पर प्रभाव-

साहित्य में समाज पूरी तरह प्रतिबिम्बित होता है । वास्तव में कबीर-काव्य में तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का पूरा चित्र अंकित है । कबीर का हृदय तत्कालीन समाज में व्याप्त उँच-नीच,

छुआछूत, जातिपाँति को भावना एवं धार्मिक बाह्याडम्बर को देखकर हाहाकार कर उठता है ; निम्नांकित छन्द द्रष्टव्य हैं -

जे तूं बाम्हन बम्हनीं जाया।तौ आँन बाट होइ काहे न आया।।
जे तूं तुरुक तुरकिनीं जाया।तौ भीतरि खतनौ क्यूं न कराया ।। [1*]

कुकड़ी मारे बकरी मारे हक्क हक्क करि बोले ।
सबै जीव साँई के प्यारे उबरहुगे किस बोले ।। [2*]

मीयाँ तुम्ह सौं बोल्यां बनि नहिं आवै ।
हम मसकीन खुदाई बंदे तुम्ह राजस मनि भावै ।। [3*]

एक नूर तैं सब जग कीआ कौंन भले कौंन मंदे । [4*]

हम तुम माँहैं एकै लोहू । एकै प्रांन बियापै मोहू ।।
एकहिं बास रहै दस मासा । सूतग पातग एकै बासा ।।
एकहिं जननि जनौ संसारा । कौंन ग्यांन तैं भएउ निनारा ।। [5*]

ऊँचे कुल क्या जनमिया, जे करनीं ऊँच न होइ ।
सोब्रन कलस सुरै भरा, साधुन निंदा सोइ ।। [6*]

1-* क०ग्रं०, प० 182
2-* क०ग्रं०, प० 183
3-* क०ग्रं०, प० 184
4-* क०ग्रं०, प० 185
5-* क०ग्रं०, र० 1
6-* क०ग्रं०, सा० 33-7

बेद पुरान पढ़े का गुनु खर चंदन जस भारा[1*] ।

कहु पंडित सूचा कवन ठाउं ।
जहां बेसि हउं भोजनु खाउं ।। [2*]

का सींगी मुद्रा चमकाएं ।का बिभूति सब अंग लगाएं ।।[3*]

का नांगें का बांधे चांम ।
जौ नहिं चीन्हसि आतमरांम ।।
नांगे फिरें जोग जौ होई । बन का मिरग मुकुति गया कोई ।।
मूंड़ मुड़ाएं जौ सिधि होई ।सरगहिं भेड़ न पहुंची कोई ।।
बिंदु राखि जौ तरिऐ भाई ।तौ खुसरें क्यूं न परम गति पाई ।।
कहै कबीर सुनौं रे भाई । रांम नांम बिन किन सिधि पाई ।। [4*]

केसौं कहा बिगारिया, जे मूड़े सौ बार ।
मन कौं काहे न मूड़िए,जामें बिखे बिकार ।।[5*]

कबीर माला मन की, और संसारी भेख ।
माला पहिरे हरि मिले, तौ अरहट के गलि देखि ।। [6*]

1-* क0ग्रं0, प0 191
2-* क0ग्रं0, प0 192
3-* क0ग्रं0, प0 172
4-* क0ग्रं0, प0 174
5-* क0ग्रं0, सा0 25-4
6-* क0ग्रं0, सा0 25-10

पाहन केरा पूतरा, करि पूजे करतार ।
इही भरोसे जे रहे, ते बूड़े काली धार ।। 1-*

परनारी को रांचनों, जस लहसुन की खानि ।
कोनैं बैठे खाइए, परगट होइ निदानि ।। 2*

एक कनक अरु कामिनी, बिख फल किया उपाइ ।
देखैं ही तैं बिख चढ़े, खाए तैं मरि जाइ ।। 3*

उस समृथ का दास हूं, कबहुं न होइ अकाज ।
पतिबरता नांगी रहे, तो उसही पुरिख को लाज ।। 4*

तीरथ ब्रत बिख बेलड़ी, सब जग मेल्हा छाइ ।
कबीर मूल निकंदिया, कौन हलाहल खाइ ।। 5*

उपर्युक्त छन्दों में कबीर ने वर्णव्यवस्था पर प्रहार करते हुए कहा है कि अगर ब्राह्मण जन्म से ही श्रेष्ठ है तो उसे जन्म लेते समय अन्य राह से आना चाहिए । वे तुर्क को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि अगर तुम मुसलमान के घर पैदा होने से मुसलमान हो तो तूने गर्भ में ही खतना क्यों नहीं कराया ? अर्थात् जन्म से कोई बड़ा और छोटा नहीं होता, न ही जन्म से जाति का निर्धारण किया जा सकता है ।

1-* क०ग्रं०, सा० 26-1
2-* क०ग्रं०, सा० 30-1
3-* क०ग्रं०, सा० 30-9
4-* क०ग्रं०, सा० 11-8
5-* क०ग्रं०, सा० 26-5

कबीर धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा के विरोधी हैं । वे कहते हैं कि मुसलमान ईश्वर के नाम पर बकरी और मुर्गी मारता है । वे भी जीव हैं । उनकी हत्या करके प्रभु के यहाँ वह कैसे उद्धार पायेगा ।

कबीर ने मुस्लिम सम्प्रदाय की कट्टरता और रूढ़िवादिता का विरोध करते हुए कहा है कि सभी जीवों में एक ही ब्रह्म समान रूप से व्याप्त है ।

कबीर छुआछूत के विरोधी हैं । वे कहते हैं कि सभी मनुष्यों की रचना ईश्वर ने एक ही "नूर" से किया है ;फिर इसमें कौन श्रेष्ठ है और कौन हीन.? सभी लोगों में एक ही खून-मांस है। सभी दस मास माँ के गर्भ में रहते हैं और एक ही जननी सभी को पैदा करती है ; फिर कैसा विभेद हुआ.? अर्थात् सभी - मनुष्य समान हैं ।

कबीर दास जन्मना श्रेष्ठता के विरोधी हैं । वे कर्म को प्रधानता देते हैं । वे कहते हैं कि उच्च कुल में जन्म लेने से ही क्या हुआ, जो कर्म उच्च नहीं हुआ । यह ठीक उसी प्रकार है, जिस तरह शराब से परिपूर्ण कनक-घट । साधु पुरुष इसकी निंदा करते हैं ।

आगे के छन्दों में कबीर ने धार्मिक बाह्याडम्बर, अंधविश्वास एवं नारी के भोग्य स्वरूप पर सीधा प्रहार किया है; किन्तु नारी के सती रूप की प्रशंसा की है ।

उपर्युक्त सभी दृष्टियों से कबीर-साहित्य के साथ-साथ उनकी शैली भी प्रभावित हुई है । जब वे सामाजिक कुरीत्तियों एवं

धार्मिक बाह्याडम्बर का वर्णन करते हैं तो उनके आक्रोश का स्वर तीव्र हो जाता है तथा तिलमिला देने वाले व्यंग्य वाणों का प्रहार करते हैं । अपनी बात को मनवाने के लिए वे ऐसे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि श्रोता प्रत्युत्तर देने में असमर्थ हो जाता है । कभी-कभी इसके लिए वे प्रश्नावली शैली का भी प्रयोग करते हैं ।

आर्थिक परिस्थिति

अर्थ किसी भी समाज की धुरी का कार्य करता है । कबीर के काल में राजनैतिक परिस्थिति का प्रभाव अर्थ-व्यवस्था पर भी पड़ा । मुसलमानों के लगातार आक्रमणों, राजनीतिक अस्थिरता, युद्धों में होने वाले व्यय का भार जनता पर होने से किसान और श्रमिक की आर्थिक स्थिति दयनीय थी । कभी-कभी अनावृष्टि एवं दुर्भिक्ष से किसानों की आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ जाती थी । सामन्तों के आर्थिक शोषण और लूट-पाट से देश की आर्थिक स्थिति खोखली हो गयी थी ।

आर्थिक स्थिति का साहित्य एवं शैली पर प्रभाव -

तत्कालीन आर्थिक स्थिति का कबीर के साहित्य पर प्रभाव पड़ा ; किन्तु कबीर का जितना ध्यान सामाजिक एवं धार्मिक विसंगति की ओर गया, उतना आर्थिक स्थिति की ओर नहीं । वे निर्धनता को ईश्वर की देन मानते थे । सांसारिक वैभव को साधना के क्षेत्र में बाधक समझते थे । उनके लिए सारा वैभव व्यर्थ था । वह यह नहीं समझ पाये कि आर्थिक विसंगति मनुष्य-जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है तथा यह विसंगति मनुष्य की स्वार्थवृत्ति का ही परिणाम

है । वे यह मानते थे कि मनुष्य-जीवन की सुविधाएँ प्रभु-प्रदत्त हैं । जिसके भाग्य में जितना बदा है, उसे उतना ही मिलेगा;उदाहरणार्थ-

जाकौं जेता निरमया, ताकौं तेता होइ ।
राई घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटै कोइ ।। [1*]

कबीर धन की चिन्ता को व्यर्थ समझते थे ; यथा-

चिंता छाड़ि अचिंत रहु, साँई है समरत्थ ।
पसु पंखेरू जीव जंतु, तिनकी गाँठी किसा गरत्थ ।। [2*]

प्रस्तुत छन्द में कबीरदास कहते हैं कि धन की चिंता करना व्यर्थ है । प्रभु समर्थ है और वह सभी की आवश्यकता की पूर्ति करता है । पशु, पक्षी और जीवजंतु के पास कौन सी पूंजी है ? उनका जीवन-यापन कैसे होता है ?

पेट भरने के लिए वे धन आवश्यक समझते थे ; किन्तु धन-संचय के विरोधी थे ; उदाहरणार्थ -

संत न बाँधे गाठरी, पेट समाता लेइ ।
आगैं पाछैं हरि खड़ा, जब माँगै तब देइ ।। [3*]

आर्थिक स्थिति का भी उनके साहित्य एवं शैली पर प्रभाव पड़ा है । उन्होंने सरल, सीधी उक्तियों द्वारा आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला है ।

1-* क०ग्रं०, सा० 32-15
2-* क०ग्रं०, सा० 32-5
3-* क०ग्रं०, सा० 32-6

धार्मिक परिस्थिति

कबीर कालीन धार्मिक परिस्थिति अत्यन्त अस्त-व्यस्त एवं छिन्न-भिन्न थी । भारतीय समाज में धर्म के नाम पर अनेक धार्मिक बाह्याडम्बर व्याप्त थे । हिन्दू लोग पत्थरों की पूजा करते थे और साधु-समाज पथ-भ्रष्ट होकर माया के वशीभूत हो गया था । जनता में अनेक तरह के अंधविश्वास[1*] फैल चुके थे । वह टोना-टोटका, शकुन-अपशकुन, तंत्र-मंत्र, झाड़-फूक और भूत-प्रेत के चक्कर में पड़ी रहती थी । धर्म के नाम पर जनता में तीर्थ-व्रत, नियम-संयम, पर्व-त्यौहार आदि प्रचलित थे । मुसलमान भी इससे अछूते नहीं थे । उनमें भी मकबरों की पूजा जैसे धार्मिक बाह्याडम्बर प्रचलित हो चले थे । पीर, औलिया आदि हिंसा में प्रवृत्त थे । इस्लाम धर्म के अन्तर्गत दो धाराएँ प्रमुख थीं-एक मुसलमानी मजहब की मुल्ला-मौलवियों की धारा तथा दूसरी सूफियों की प्रेम-धारा । सूफी संत अपनी प्रेम की पीर के लिए प्रसिद्ध थे । वे मुल्ला-मौलवियों की अपेक्षा अधिक उदार थे तथा जनता में प्रेम के पीर की शिक्षा देते थे; जिससे वे जनता को प्रभावित कर लेते थे । सूफी संत झाड़-फूक भी करते थे । सभी धर्मों में विकृतियाँ आ गयी थीं ।

बौद्ध एवं जैन धर्म का प्रभाव कम हो गया था । शाक्तों का प्रभाव अब भी जनता में था । नाथपंथियों का सर्वाधिक प्रभाव उत्तर भारत में था ; वैसे तो इसका प्रभाव पूरे देश में व्याप्त था । जैन साधु अहिंसा के नाम पर बाह्य प्रदर्शन कर रहे थे । शाक्त गुह्य साधनाओं और हिंसा में लीन थे । बौद्ध सिद्धों में भी अनाचार प्रविष्ट हो गया था । सिद्ध पंच मकार का सेवन करते थे । इस प्रकार धर्म के नाम पर समाज पथ-भ्रष्ट हो रहा था ।

1-* डॉ० रामचन्द्र तिवारी-कबीर मीमांसा, पृ० 12

कबीर के आविर्भाव से पूर्व शास्त्रज्ञ आचार्यों की एक अलग धारा चली आ रही थी । इस धारा के मूल प्रवर्तक शंकराचार्य थे ; किन्तु उनके और बाद के आचार्यों के सिद्धान्तों में मौलिक अन्तर था । शंकराचार्य के परवर्ती आचार्यों में रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, माध्वाचार्य और वल्लभाचार्य प्रमुख हैं । शंकराचार्य ने साधना के क्षेत्र में ज्ञान के महत्त्व को प्रतिपादित किया, जबकि उनके परवर्ती आचार्यों ने भक्ति की विशिष्टता प्रतिपादित की । इसी परम्परा में आगे चलकर वैष्णव-भक्ति का उदय हुआ । यह भक्ति दक्षिण के आलवार भक्तों से उमड़कर उत्तर भारत में फैल गयी थी । इसके प्रवर्तक थे-रामानन्द । इस भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप उत्तर भारत में योगियों का प्रभाव जनता में कम हो गया था । कबीर ने इस भक्ति आन्दोलन को और आगे बढ़ाया ।[1]

धार्मिक परिस्थिति का साहित्य एवं शैली पर प्रभाव -

कबीर के काव्य में तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति का पूरा प्रभाव पड़ा है । धार्मिक विसंगतियों का सही चित्रण कबीर ने अपने काव्य में किया है । उन्होंने धार्मिक कुरीतियों व धर्म में व्याप्त बाह्य-आडम्बर पर करारा प्रहार किया है ; उदाहरणार्थ -

काजी तैं कवन कतेब बखानीं ।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते गति एकौ नहिं जांनीं ।।
सकति सनेह पकरि करि सुनति मैं न बदउंगा भाई ।
जौ रे खुदाइ तुरक मोहिं करता तौ आपहिं कटि किन जाई ।।
सुनति कराइ तुरक जौ होना तौ औरति कौं का कहिए ।
अरध सरीरी नारि न छूटै तातैं हिन्दू रहिए ।।
हिंदू तुरक कहाँ तैं आए किन यह राह चलाई ।
दिल महिं खोज देखि खोजादे भिस्ति कहाँ तैं आई ।।

1-* डा० गोविन्द त्रिगुणायत-कबीर की विचारधारा, पृ० 6।

छाँड़ि कतेब राम भजु बउरे जुलुम करत है भारी ।
कबीरै पकरी टेक राम की तुरक रहे पचि हारी ।। [1*]

चंदन की कुटकी भली, नां बबूर लखरांव ।
साधुन की छपरी भली, नां साकत कौ बड़गांव ।। [2*]

माला फेरैं क्या भया, जौ भांति न आई हाथि ।
दाढ़ी मूंछ मुड़ाइ कै, चला दुनीं कै साथि ।। [3*]

मूंड मुड़ावत दिन गए, अजहूं न मिलिया राम ।
राम नाम कहु क्या करै, जे मन के औरै काम ।। [4*]

मुला मुनारे क्या चढ़हि, अलह न बहिरा होइ ।
जेहि कारन तूं बांग दे, सो दिल ही भीतरि जोइ ।।[5*]

वेद पुरान पढ़े का क्या गुनु खर चंदन जस भारा । [6*]

पाहन कौं क्या पूजिए, जो जनमि न देई ज्वाब ।
अंधा नर आसामुखी, यौंही खोवै आब ।। [6**]

जहाँ दया तहं धर्म है, जहाँ लोभ तहं पाप ।
जहाँ क्रोध तहं काल है, जहाँ छिमां तहं आप ।।[7*]

1-* क0ग्रं0, प0 178

2-* क0ग्रं0, सा0 4-37

3-* क0ग्रं0, सा0 25-14

4-* क0ग्रं0, सा0 25-19

5-* क0ग्रं0, सा0 26-3

6-* क0ग्रं0, प0 191

6-** क0ग्रं0, सा0 26-8

7-* क0ग्रं0, सा0 15-33

नाँ जसरथ घरि औतरि आवा।नाँ लंका का राव सतावा ।।
देवै कोखि न अवतरि आवा । नाँ जसवै ले गोद खिलावा ।।
नाँ वो ग्वालन के सँगि फिरिया।गोबरधन ले नाँ कर धरिया ।।
बावन होइ नहीं बलि छलिया ।धरनीं बेद ले न उधरिया ।। 1*

रांम पियारा छाड़ि करि, करै आंन का जाप ।
बेस्वा केरा पूत ज्यौं, कहै कौंन सौं बाप ।। 2*

उपर्युक्त छन्दों में कबीर ने हिन्दू, मुसलमान दोनों के धार्मिक बाह्याडम्बर, पुस्तकीय ज्ञान एवं धार्मिक अंधविश्वास की निंदा की है तथा हिन्दुओं के बहुदेववाद एवं अवतारवाद का खण्डन किया है ।

कबीर की शैली तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित है । कबीर ने धार्मिक परिस्थितियों से सम्बन्धित छन्दों के लिए सरल, सीधी भाषा का प्रयोग किया है ; किन्तु उसमें व्यंग्य भरा हुआ है । इसके लिए वे प्रश्नावली शैली का भी प्रयोग करते हैं । जिसका उत्तर श्रोता के पास नहीं होता और वह व्यंजित व्यंग्य उसे गूंगा बना देता है । वे कभी-कभी प्रश्न से, विरोधी वाक्यों को साथ रखकर, अपने व्यंग्य को उभारते हैं । जैसा कि ऊपर वर्णित छन्द "सुनति कराइ तुरक जो होनां तो औरति कौं का कहिए" से स्पष्ट है ।

साहित्यिक परिस्थिति

कबीर अनपढ़ थे । वे शास्त्र एवं पुस्तकीय विद्या के विरोधी थे । साहित्य से उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था । उन्हें जो कुछ भी मिला था, वह साधु-संगति एवं देशाटन का परिणाम था ।

1-* क०ग्रं०, र० 3 2-* क०ग्रं०,सा० 3-20

साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती एवं समसामयिक साहित्य से अवश्य किसी न किसी रूप में प्रभावित होता है । कबीरदास भला इससे कैसे वंचित रह सकते थे - सीधे न सही परोक्षरूप से । वे सारग्राही महात्मा थे । साधु-संगति एवं देशाटन उनकी दिन-चर्या थी । ये सिद्ध और नाथ साहित्य से विशेष रूप से प्रभावित दिखायी पड़ते हैं। सिद्धों की जीवन के प्रति सहज अनुभूति, कर्मकाण्ड एवं परम्पराओं की हँसी उड़ाने की छाप कबीर पर दिखायी पड़ती है ; किन्तु कबीर का स्वर अधिक प्रखर है । "सहज, गुरु-उपदेश, शून्य, खसम, निरंजन कबीर ने ज्यों के त्यों सिद्धों की विचारधारा से वैसे ही ग्रहण किए हैं, जो नाथ-सम्प्रदाय में भी प्रवेश पा गए थे । शैली की दृष्टि से सिद्धों की "संधा भाषा" में जो कूट और प्रतीक हैं, उन्हीं में कबीर के रूपक और उलटबाँसियों का निर्माण हुआ है ।" [1*] नाथ सम्प्रदाय की अंधविश्वासों के प्रति उग्रता, कर्मकाण्डों की व्यर्थता एवं आचार-निष्ठा को कबीर ने मूल रूप में ग्रहण किया । वे नाथपंथियों की साधना-पद्धति से भी प्रभावित दिखायी पड़ते हैं ; किन्तु उन्होंने इस साधना को सरल रूप प्रदान किया और इसे रसंसिक्त किया । कबीर ने विश्वधर्म की कल्पना की थी, जहाँ जाति, वर्ग एवं वर्णनाम की कोई वस्तु नहीं थी और यह भक्ति सर्वसुलभ थी । यह निर्गुण भक्ति की सबसे बड़ी मौलिकता थी ।

कबीर ने सिद्धों के पंचमकार तथा नाथों के भी धार्मिक बाह्याडम्बर का विरोध किया । वे लकीर के फकीर नहीं थे । उन्होंने जिन सिद्धान्तों को ग्रहण किया, उसे सर्वप्रथम अपनी अनुभूति के तराजू पर तोला, जाँचा-परखा । उन्होंने किसी को भी नहीं छोड़ा; जहाँ भी कहीं कोई कमी उन्हें दृष्टिगोचर हुई, वहीं उन्होंने उसका तुरन्त विरोध

1-* डॉ० रामकुमार वर्मा- कबीर:एक अनुशीलन, पृ० 75

किया । परम्परा से ग्रहण की गयी बातों को उन्होंने अपने साँचे में ढालकर अपना व्यक्तित्व प्रदान किया । उन्होंने जनता की भाषा में जनता को उपदेश दिया, सरल किन्तु प्रभावपूर्ण शैली में । यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी ।

कबीर की शैली सिद्धों और नाथों से पूरी तरह प्रभावित दिखायी पड़ती है । सिद्धों से उनकी उलटबाँसियाँ एवं रूपक तथा नाथों से खण्डन-मण्डन की शैली प्रभावित हुई है ।

कबीर सूफियों से भी प्रभावित दिखायी पड़ते हैं । उन्होंने सूफियों से प्रेम की मादकता ग्रहण की है । सूफियों की ही तरह वे प्रेम के समर्थक हैं । उन्होंने अपने काव्य में दाम्पत्य प्रतीकों के माध्यम से जो रहस्यवाद की सृष्टि की है, वह सूफी प्रभाव ही है ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कबीर का साहित्य एवं शैली एक लम्बी परम्परा से प्रभावित है ।

—*—

३- कबीर का जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व

*

जीवनवृत्त

1· जन्म -

कबीरदास के जन्म के विषय में आज तक अनिश्चितता बनी हुई है । किसी भी कवि के विषय में कुछ जानने के लिए दो बिन्दुओं पर दृष्टिपात करना आवश्यक है -1· कवि ने अपने बारे में स्वयं कुछ लिखा या कहा हो, जिसे अंत:साक्ष्य कहा जाता है । 2· कवि के तत्कालीन या परवर्ती लोगों ने उनके बारे में कुछ कहा हो, जिसे बहि:साक्ष्य कहा जाता है ।

कबीर की जन्मतिथि के बारे में भी हम इन्हीं दो स्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचार करेंगे । कबीर ने अपनी जन्मतिथि के सम्बन्ध में कहीं भी कुछ उल्लेख नहीं किया है । एक हल्का संकेत उनकी रचनाओं में मिलता है । जिसके आधार पर कबीर की जन्मतिथि के बारे में सोचा जा सकता है ।

गुरू परसादि जैदेव नामा ।
भगति के प्रेम इन्हहि है जाना ।। [1*]

उपर्युक्त पंक्तियों से ज्ञात होता है कि कबीरदास का जन्म जयदेव और नामदेव के पश्चात् ही हुआ था । जयदेव का समय 12वीं शताब्दी[2*] और नामदेव का समय 13वीं शताब्दी[3*] का अन्त माना जाता है ।

1-* डॉ0 श्यामसुन्दर दास-कबीर ग्रन्थावली, पृ0 328
2-* मोनियर विलियम-ब्रह्मनिज्म एण्ड हिन्दूइज्म पृ0 146
3-* डॉ0 भंडारकर-वैष्णवइज्म शैवइज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स पृ0 92

बहिस्साक्ष्यों के आधार पर कबीर की जन्मतिथि भिन्न-भिन्न ठहरती है । डॉ० हण्टर ने कबीरदास के जन्म का समय सम्वत् 1437 और पादरी वेस्टकाट 1497 मानते हैं । "आइने अकबरी" में भी कबीरदास का उल्लेख मिलता है । "आइने अकबरी" का रचनाकाल सन् 1596 माना जाता है । इससे विदित होता है कि कबीरदास इस रचना से पूर्व ही स्वर्गवासी हो गये थे । इस प्रकार कबीरदास की जन्मतिथि चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच ठहरती है । कबीरपन्थ में प्रचलित अन्य छन्द, जो कबीरदास की जन्मतिथि के सम्बन्ध में बार-बार आता है, अधो-लिखित है -

चौदह से पचपन साल गए चंद्रवार एक ठाट ठए ।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए ।।
घन गरजे दामिनि दमके बूँदें बरसें झर लाग गये ।
लहर तालाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु परकास भये ।।[1*]

इस छन्द के अनुसार कबीरदास की जन्मतिथि चन्द्रवार ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा संवत् 1455 है ; परन्तु गणना से चन्द्रवार ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा को नहीं पड़ता । डॉ० श्यामसुन्दरदास "गए" का अर्थ संवत् 1455 व्यतीत हो जाने पर अर्थात् संवत् 1456 करते हैं । इस सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए डॉ० माताप्रसाद गुप्त कहते हैं कि सं० 1456 में ज्येष्ठ पूर्णिमा मंगलवार को पड़ती है, चन्द्रवार को नहीं । छन्द में आए "बरसायत" पर दृष्टिपात करने पर हमारे सामने कठिनाई उत्पन्न होती है । अगर इसका अर्थ "वटसावित्री पर्व" लिया जाय तो यह पर्व ज्येष्ठ की अमावस्या को पड़ता है, पूर्णिमा को नहीं । गणना की संगति बैठाने के लिए इसका दूसरा अर्थ "श्रेष्ठ मुहूर्त" लेना पड़ेगा ।

1-* डॉ० श्यामसुन्दर दास-कबीर ग्रन्थावली. पृ० 18. सन् 1928

इस छन्द की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है । इस छन्द की रचना किसने की, कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता । इस छन्द की अन्तिम दो पंक्तियों में कबीर के अलौकिक व्यक्तित्व के बारे में उल्लेख किया गया है, जो यह सिद्ध करता है कि पूरी रचना किसी श्रद्धालु भक्त की है, जो श्रद्धा एवं कल्पना पर आधारित है परन्तु डॉ० श्यामसुन्दरदास इसके रचयिता कबीरदास के शिष्य धर्मदास को ठहराते हैं ।

परन्तु इसके सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिलता । अस्तु, यह तिथि संदिग्ध है ।

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में एक दूसरे छन्द की भी चर्चा की जाती है ।

> सम्वत बारह सौ पाँच में, ज्ञानी कियो विचार ।
> कासी में परगट भयो, सब्द कहो टकसार ।।

इसके अनुसार कबीरदास की जन्मतिथि संवत् 1205 आती है ; परन्तु इसकी भी प्रामाणिकता संदिग्ध है ।

डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत[2*] विभिन्न तर्कों के आधार पर कबीर की जन्मतिथि संवत् 1455 मानते हैं ।

निष्कर्षत: कबीर की जन्मतिथि संवत् 1455 की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता ।

1-* डॉ० श्यामसुन्दरदास-कबीर ग्रन्थावली, पृ० 18, सन् 1928

2-* कबीर की विचार-धारा, पृ० 24

2· <u>जन्म-स्थान-</u>

एक किंवदन्ती के अनुसार कबीरदास का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था । उसने लोक-लाज के भय से इस सद्यःजात शिशु को एक सरोवर के किनारे छोड़ दिया । नीरू और नीमा जुलाहा दम्पत्ति ने इस शिशु को जलाशय के किनारे पड़ा पाया और उसे उठाकर घर ले गया तथा पालन-पोषण प्रारम्भ कर दिया । यह जलाशय कहाँ है ? आज तक निश्चित नहीं हो सका है ।

कबीर के जन्म-स्थान के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक है । प्रथम मत के अनुसार डॉ० चन्द्रबली पाण्डेय कबीर का जन्म-स्थान आजमगढ़ जिले के "बेलहरा" नामक गाँव को मानते हैं । इसका आधार उन्होंने "बनारस डिस्ट्रिक्ट गजेटियर" को माना है । जिसमें कबीरदास का जन्म आजमगढ़ जिले का बेलहरा गाँव उल्लिखित है । इसका समर्थन करते हुए डॉ० चन्द्रबली पाण्डेय कहते हैं :-

"आज भी पटवारी के कागदों में "बेलहरा" उर्फ "बेलहर पोखर" लिखा मिलता है । अपनी निजी धारणा तो यह है कि यही "बेलहर पोखर" लहर तालाब की जड़ है, "बेलहर" का "लहर" और "पोखर" का "तालाब" कर लेना जनता के बाएं हाथ का खेल है।"

इनके मतानुसार यह "बेलहर" गाँव उर्फ "बेलहर पोखर" ही लहर तालाब है, जहाँ विधवा ब्राह्मणी ने अपने नवजात शिशु को लोक-लाज के भय से फेंक दिया था । परन्तु इस मत का समर्थन कोई - अन्य विद्वान नहीं करता, न तो इससे सम्बन्धित कोई प्रमाण ही मिलता है ।

द्वितीय मत "डॉ० सुभद्रा झा" के अनुसार कबीर का जन्म मिथिला में हुआ था ; परन्तु डॉ० झा द्वारा दिये गये तर्क तर्कसंगत प्रतीत नहीं होते ।

तृतीय मत के अनुसार कबीरदास का जन्म काशी में हुआ था । इस मत के मानने वाले विद्वान इसके समर्थन में तर्क प्रस्तुत करते हैं, जो अग्रांकित हैं -

1-कबीरदास ने अपने काव्य में अपने को काशी का जुलाहा कहा है । 1*

2-कबीरपंथी ग्रन्थ तथा जनश्रुतियाँ कबीर का जन्म काशी में मानते हैं ।

परन्तु कबीर का जन्म-स्थान काशी मानने के पक्ष में विद्वानों ने जो तर्क दिये हैं, उनको तर्कसंगत नहीं माना जा सकता; क्योंकि कबीर ने अगर अपने काव्य में अपने को "कासी क जोलहा" कहा है, तो इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि उन्होंने काशी में जन्म लिया था । यह स्वाभाविक है कि इतने दिनों तक काशी में रहने वाला व्यक्ति अपने को काशी का जुलाहा कह सकता है । कबीरपंथी ग्रन्थों की बातें भी प्रामाणिक नहीं मानी जा सकतीं ; क्योंकि वे भक्ति से प्रेरित तथा साम्प्रदायिक हैं । इनके कथन का कोई ठोस आधार नहीं है । अस्तु, काशी को भी कबीर का जन्म-स्थान नहीं माना जा सकता ।

चतुर्थ मत के अनुसार कबीरदास का जन्म-स्थान मगहर मानने वाले अधोलिखित दोहे को आधार मानते हैं, जो "गुरुग्रन्थ साहिब" में मिलता है -

---

1-* तूं बांहमन मैं कासी क जोलहा, बोन्हि न मोर गियाना ।
-क०ग्रं०, प० 188·

"पहिले दरसनु मगहर पाइओ पुनि कासी बसे आई ।"

सर्वप्रथम इस पद की प्रामाणिकता ही संदिग्ध है ; क्योंकि यह पद कबीर ग्रन्थावली (डॉ० पारसनाथ तिवारी) और कबीर ग्रन्थावली (डॉ० माताप्रसाद गुप्ता) में नहीं मिलता है । यदि इसे प्रामाणिक मान भी लिया जाय तो "दरसनु" शब्द को लेकर इसके अर्थ के सम्बन्ध में विवाद है । कुछ विद्वान इसका अर्थ "जन्म लेना" करते हैं और कुछ "ईश्वर दर्शन" । डॉ० रामकुमार वर्मा इस सन्दर्भ में कहते हैं - "मृत्यु के समय उनका मगहर लौट जाना मनुष्य की उस स्वाभाविक प्रेरणा का प्रतीक हो सकता है, जिससे वह अपनी जन्म-भूमि या उसके समीप ही आकर मरना चाहता है । अत: मेरे दृष्टिकोण से कबीर का मगहर में जन्म मानना अधिक युक्तिसंगत है । " 1* डॉ०त्रिगुणायत भी कबीर का जन्म-स्थान मगहर मानते हैं । इसकी पुष्टि में वे विभिन्न तर्क प्रस्तुत करते हैं; जो अग्रांकित हैं तथा वे पूर्वोक्त पद में आये "दरसनु" शब्द के अर्थ "जन्म लेना" का समर्थन करते हैं । डॉ० त्रिगुणायत ने इस समर्थन में कुल छ: तर्क दिये हैं :-" 1. मगहर में मुसलमानों की बस्ती बहुत अधिक है । वे सभी अधिकतर मुसलमान हैं । कोई आश्चर्य नहीं कि कबीर इन्हीं जुलाहों के घर उत्पन्न हुए हों ।

2. कबीरदास ने अपनी रचनाओं में मगहर की कई बार चर्चा की है । इसका तात्पर्य यह है कि मगहर से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्होंने उसे सदैव काशी के समकक्ष ही पवित्र और उत्तम माना है । इतनी अधिक श्रद्धा-भावना केवल जन्म-स्थान के प्रति ही हो सकती है ।

1-* डॉ० राम कुमार वर्मा-
संत कबीर, पृ० 76.

3· कबीरदासजी मृत्यु का समय समीप आने पर मगहर चले गये थे । उन्होंने काशी में रहना बहुत उचित नहीं समझा । यह मानव स्वभाव है कि वह जहाँ उत्पन्न होता है, वहीं मरना चाहता है ।

4· कबीरदास जी ने स्पष्ट लिखा है कि सबसे प्रथम उन्होंने मगहर को देखा था और उसके बाद वे काशी में बस गए थे । इस उक्ति में खींच-तानकर दूसरा अर्थ लगाना हठधर्मी भर होगी ।

5· कबीरदास ने लिखा है कि "तोरे भरोसे मगहर बसिओ मेरे तन की तपन बुझाई " इस पंक्ति से स्पष्ट है कि अपनी जन्मभूमि में पहुँचकर कबीरदास जी को बड़ी शान्ति मिली थी । जन्मभूमि में पहुँचकर कबीरदासजी को इस प्रकार की शान्ति का अनुभव करना स्वाभाविक भी है ।

6· एक बात और है । "आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया" में लिखा है कि बिजली खाँ ने बस्ती जिले के पूर्व में आमी नदी के दाहिने तट पर रोजा सम्वत् 1507 में बनवाया था । सिकन्दर लोदी और कबीर के मिलन की घटना के आधार पर निश्चित किया जा चुका है कि उस समय कबीर जीवित थे । मेरा अनुमान है कि बिजली खाँ कबीर का भक्त था । उसने कबीर के जीवनकाल में कबीर के जन्म-स्थान में कोई स्मारक बनवाया होगा । आगे चलकर फिदई खाँ ने उनकी मृत्यु के बाद उसे रोजे का रूप दिया होगा ।

उपर्युक्त सभी कारणों से सिद्ध होता है कि कबीर का जन्मस्थान मगहर काशी का समीपवर्ती मगहर था । [1*]

1-* डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत-कबीर की विचार-धारा, पृ०25

उक्त पद के सन्दर्भ में डॉ0 बड़थ्वाल अपना निष्कर्ष देते हैं -"इससे जान पड़ता है कि काशी में बसने के पहले वह केवल मगहर में रहते ही नहीं थे, वहीं उन्हें पहले-पहल परमात्मा का दर्शन भी प्राप्त हुआ था । अधिक संभव यह है कि कबीर का जन्म मगहर ही में हुआ हो, जो आज भी प्रधानतया जुलाहों की बस्ती है ।" ।*

कबीर के जन्मकाल से सम्बन्धित छन्द"चौदह सौ पचपन साल गए चन्द्रवार एक ठाट ठए" में "चन्द्रवार" शब्द को स्थानसूचक मानकर कुछ विद्वान कबीर का जन्म बलिया के "चंदवार" गाँव में मानते हैं ; परन्तु यह एक प्रकार से अनावश्यक खींचतान प्रतीत होती है ।

कबीर के मगहर जन्म के सम्बन्ध में प्रचलित छन्द "पहिले दरसनु मगहर पाइओ पुनि कासी बसे आई" में आये "दरसनु" शब्द का अर्थ विद्वानों ने"जन्म लेना" लगाया है, उससे मैं असहमत हूँ । यहाँ "दरसनु" शब्द का अर्थ "ईश्वर-प्राप्ति" या "आत्मदर्शन" से ही है, जन्म लेने से नहीं, जो कवि के स्वर से भी मेल खाता है ।

इस प्रकार कबीर के जन्मस्थान के सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा दिये गये तर्कों के आधार पर कबीर का जन्म मगहर व काशी की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता; परन्तु निर्विवाद रूप से कुछ भी कहना संभव नहीं है । इसके सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलते ।

।-* डॉ0 पी0डी0 बड़थ्वाल-
हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ045

3. नाम-

कबीर शब्द का उल्लेख साहित्यिक सन्दर्भों में जिन अर्थों में भी दिखायी पड़ता है, उनके महत्त्व अलग-अलग हैं। लेकिन कबीर नाम बनकर जिस एक व्यक्ति के साथ जुड़ा, वे हैं संत कबीरदास। नाम वस्तु, व्यक्ति अथवा भाव का प्रतीक भर होता है, जिसका व्यवहार शब्द स्तर पर किया जाता है। दूसरे शब्दों में नाम का अर्थ वही होता है, जिसके लिए वह प्रयुक्त होता है। कबीर शब्द द्वारा जो दूसरे अर्थ स्वीकृत हुए हैं, उनका सम्बन्ध व्यक्ति से नहीं है। संत कबीरदास के माता-पिता ने उनके जन्म के बाद उन्हें क्या नाम दिया था; यह आज तक अज्ञात है। आलोचकों ने यह संभावनाएँ व्यक्त की हैं कि मुसलमान कुल में उत्पन्न होने के कारण कबीर उनके नाम का अंशमात्र है, नाम का पूरा रूप अब भी अस्पष्ट है तथा यह भी संभावना की जा सकती है कि छोटी जाति में जन्म लेने के कारण उनका नाम भी छोटा रखा गया हो। आलोचकों ने इस बात का सीधे समर्थन किया है कि संत कबीर के सन्दर्भ में यह शब्द एक व्यक्ति के नाम में रूढ़ है। प्रयोग की दृष्टि से कबीर अरबी भाषा का शब्द है। अरबी शब्दकोष में इसके चार अर्थ लिये गये हैं -श्रेष्ठ, बड़ा, महान, गौरवपूर्ण। कबीर शब्द के प्रयोग की अन्य परम्पराएँ भी प्राप्त हैं। कुछ विद्वानों ने कबीर शब्द की व्युत्पत्ति होली पर गाये जाने वाले छन्दों से की है तथा इस शब्द को कवि शब्द से व्युत्पन्न माना है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने कवि > कब्ब > काव्य के क्रमात्मक विकास से जोड़कर इसमें ड़ा प्रत्यय लगाकर इस शब्द की व्युत्पत्ति स्वीकृत की है, जिसका अर्थ होता है "हल्के ढंग का काव्य"। इस तरह यह शब्द कबीरा अथवा कबीर से व्युत्पन्न माना गया है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त होली की परम्परा से जुड़ने वाले हल्के काव्यों ने इन्हीं पृष्ठभूमिओं में स्वीकार

करते हैं। प्रसिद्ध लेखक फरीद के "पतितनामा" में "काबि कबीरी" शब्द का प्रयोग हुआ है, जहाँ "काबि कबीरी" को उपदेशमूलक काव्य कहा गया है। आलोचकों ने कबीर शब्द की व्युत्पत्ति इस परंपरित काव्य अर्थ से ही करनी चाही। "नामदेव की हिन्दी पदावली" में "कबिरा" शब्द का प्रयोग मिलता है और यह शब्द उन आशु कवि गायकों के लिए आया हुआ है, जो लावनी शैली में कविताएँ करते रहे। यह उन कवियों का समुदाय रहा है, जिनके प्रति सामान्य जन का आकर्षण देखा गया है -

> चंद्रभागा बालबंट पर कबिरा धूम चलाई।
> साधुसंत की हो गई गर्दी भजन कुटाई खूब खाई ।।[1*]

चौथा प्रयोग विशेषण के रूप में हो सकता है, जिसका अर्थ श्रेष्ठ अथवा महान होता है। कबीरदास अपनी साखियों में इस शब्द का व्यवहार संज्ञा और विशेषण दोनों रूपों में करते हैं -

> "जे कछु किया सु हरि किया, भया कबीर कबीर।" [2*]

इन प्रसंगों में प्रथम प्रयोग कवि +डा प्रत्यय के अर्थ में हो सकता है, दूसरा श्रेष्ठ के अर्थ में, ब्रह्मवाद के सन्दर्भ में श्रेष्ठ अथवा महान अर्थ स्वीकार किया जा सकता है और इस भूमिका में कबीर का अर्थ होगा- ब्रह्म ही महान होता है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने "कबीर ग्रन्थावली" पृष्ठ संख्या 10 पर इस चौथे निष्कर्ष

1-* डॉ० भगीरथ मिश्र -नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 189,5-6

2-* क०ग्रं०, सा० 7-13

को भी स्वीकार करते हुए कबीर शब्द को ब्रह्म अर्थ से जोड़कर उसकी श्रेष्ठता को आनुसंगिक माना है । अपने परम्परागत अर्थों में बदलते हुए यह शब्द इस स्थिति को प्राप्त हुआ है, जहाँ एक व्यक्ति के नाम से जुड़कर इसे सामाजिक प्रतिष्ठा मिली ।

4• माता-पिता-

जनश्रुति के अनुसार महात्मा कबीरदास की उत्पत्ति स्वामी रामानंद के आशीर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुई थी । उसने लोक-लाज के भय से उस नवजात शिशु को लहरतारा के किनारे छोड़ दिया, राह चलते हुए नीरु और नीमा जुलाहा दम्पत्ति ने उस बालक को पाया और उसका पालन-पोषण किया । यही बालक आगे चलकर "कबीर" नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस जनश्रुति के अनुसार कबीर के माता-पिता नीरु और नीमा ठहरते हैं ;परन्तु जनश्रुति के आधार पर कबीर के माता-पिता का निर्धारण औचित्य-पूर्ण प्रतीत नहीं होता ।

कबीर-भक्त कबीर की उत्पत्ति दिव्यगति से मानते हैं । आज इस वैज्ञानिक युग में इस प्रकार का मत मान्य नहीं हो सकता । ऐसी कल्पना उनके भक्तों द्वारा श्रद्धावश की गयी होगी ।

इस सम्बन्ध में डॉ० रामकुमार वर्मा का विचार है कि "कबीर के पिता एक बड़े गोसाई थे, उनके प्रति कबीर को बहुत श्रद्धा थी ।' इस पुष्टि में वे अधोलिखित छन्द उद्धृत करते हैं -

"पिता हमारो वड़ गोसाईं। तिसु पिता पहि हउ किउ करि जाइ ।
सति गुरु मिले त मारगु दिखाइआ ।जगत पिता मेरे मन भाइआ ।
हउ पूतु तेरा तू बाप मेरा । एकै ठाहर हुआ बसेरा ।
कहु कबीर जनि एको बूझिआ ।गुरु प्रसादि मैं सभु किछु सूझिआ*।।"

डॉ० वर्मा का यह कहना कि कबीर के पिता एक बड़े गोसाईं थे, उचित प्रतीत नहीं होता । कबीर का मंतव्य यहां सबसे बड़ा स्वामी अर्थात् परम पिता परमेश्वर से है, न कि गोसाईं जाति से ।

दूसरे अन्तस्साक्ष्य में कबीर की माता का उल्लेख मिलता है । कबीर की माता कबीर से दुःखी रहा करती थीं ; क्योंकि वे कताई-बुनाई का कार्य छोड़कर राम-भजन एवं सत्संग में तल्लीन रहते थे, जिससे आय का स्रोत जाता रहा । अधोलिखित पंक्तियों में इसे देखा जा सकता है ।

"नित उठि कोरी गागरि आनै, लीपत जीउ गइओ ।
ताना बाना कछू न सूझै, हरि रस लपटिओ ।
हमारे कुल कउनै राम कहिओ ।
जब की माला लई निपूते, तब ते सुख न भइओ ।
सुनहु जिठानी, सुनहु देरानी, अचरजु एकु भइओ ।
सात सूत न मूडीए खोए, इह मुडीआ किउ न मुइओ ।
सरब सुखा का एकु हरि सुआमी सो गुरि नाम दइओ ।
संत प्रहलाद की पैज जिनि राखी हरनाखसु नख बिदारिओ ।
घर के देव पितर की छोड़ी गुर को सबदु लहिओ ।
कहत कबीर सकल पाप खंडनु, संतह ले उधरिओ ।" 2*

1-* डॉ० राम कुमार वर्मा-संत कबीर, पृ० 72
2-* डॉ० राम कुमार वर्मा-संत कबीर, राग बिलावलु4, पृ० 155

इन तथ्यों के आधार पर यह निर्धारित नहीं किया जा सकता कि कबीरदास के मातापिता कौन थे ? इतना जरूर कहा जा सकता है कि वे "जुलाहा परिवार" में पालित थे ।

5• जाति एवं व्यवसाय-

कबीरदास के जाति के बारे में अध्ययन हम अन्त:साक्ष्यों एवं बहि:साक्ष्यों के आधार पर करेंगे । अन्त:साक्ष्य में कबीर की वाणी अधोलिखित छन्दों में देखी जा सकती है ।

"तूं बाम्हन मैं कासी क जुलहा मोहिं तोहिं बराबरी कैसे कै बनहिं[1*] ।"

"तूं ब्राह्मन मैं कासी क जोलहा चीन्हि न मोर गियांनां ।
तैं सब मागे भूपति राजा मोरे रांम धियांनां ।
पूरब जनम हम बांह्मन होते ओछे करम तप हीनां ।
रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीन्हो । " 2*

"जैसे जल जलहीं ढुरि मिलियो, त्यों ढुरि मिल्यो जुलाहो ।" 3*

"तननां बुननां तज्यो कबीर ।रांम नांम लिखि लियो सरीर ।।" 4*

1-* क0ग्रं0, प0 196

2-* क0ग्रं0, प0 188

3-* क0ग्रं0, प0 200

4-* क0ग्रं0, प0 12

"परिहर औम राम कहि बौरे सुनि सिख बन्धु मोरी ।
हरि को नाँउ अभैपददाता, कहै कबीरा कोरी ।। " 1*

"जोलाहे घर अपना चीना, घट ही राम छिपाना ।
कहत कबीर कारगह तोरी, सूतै सूत मिलाये कोरी ।।" 2*

उपर्युक्त पदों में देखा जाता कि कबीर अपने को कहीं जुलाहा और कहीं कोरी कहते हैं । "जुलाहा" जाति मुसलमान होती है और "कोरी" जाति हिन्दू । अब यह विचारणीय हो जाता है और यह प्रश्न उठता है कि वे हिन्दू थे या मुसलमान । इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों के विचार द्रष्टव्य हैं । सर्वप्रथम डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत द्रष्टव्य है । वे कहते हैं - "ऐसा जान पड़ता है कि मुसलमानों के आने के पहले इस देश में एक ऐसी श्रेणी वर्तमान थी, जो ब्राह्मणों से असंतुष्ट थी और वर्णाश्रम के नियमों की कायल नहीं थी । नाथपंथी योगी ऐसे ही थे । ----जो हो इस विषय में कोई सन्देह नहीं कि उन दिनों नाथ-मतावलम्बी गृहस्थ योगियों की एक बहुत बड़ी जाति थी, जो न हिन्दू थी और न मुसलमान । --- कई बातें ऐसी हैं जो यह सोचने को प्रवृत्त करती हैं कि कबीरदास जिस जुलाहा-वंश में पालित हुए थे वह इसी प्रकार के नाथ-मतावलम्बी गृहस्थ योगियों का मुसलमानी रूप था ।

सबसे खटकने वाली बात यह है कि कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, पर मुसलमान एक बार भी नहीं

1-* डॉ० श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली, पद 346
2-* डॉ० श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रन्थावली, परिशिष्टपद-49

कहा । वे बराबर अपने को "ना हिन्दू ना मुसलमान कहते रहे ।"
-------उन दिनों वयनजीवी नाथ -मतावलम्बी गृहस्थ योगियों
की जाति सचमुच ही "ना हिन्दू ना मुसलमान थी ।"

डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आगे कहा है -"कबीरदास के विषय
में प्रसिद्ध है कि उनकी मृत्यु के बाद कुछ फूल बच रहे थे जिनमें से
आधे को हिन्दुओं ने जलाया और आधे को मुसलमानों ने गाड़ दिया।
कई पंडितों ने इस बात को करामाती किंवदन्ती कहकर उड़ा दिया
है, पर मेरा अनुमान है कि सचमुच ही कबीरदास को ‡त्रिपुरा जिले
के वर्तमान योगियों की भाँति‡ समाधि भी दी गई होगी और
उनका अग्नि-संस्कार भी किया गया होगा । यदि यह अनुमान
सत्य है तो दृढ़ता के साथ ही कहा जा सकता है कि कबीरदास जिस
जुलाहा जाति में पालित हुए थे वह एकाध पुश्त पहले के योगी जैसी
किसी आश्रम-भ्रष्ट जाति से मुसलमान हुई थी या अभी होने की
राह में थी ।

जोगी जाति का सम्बन्ध नाथपंथ से जान पड़ता है,
कबीर के वंश में भी यह नाथपंथी संस्कार पूरी मात्रा में थे । यदि
नाथपंथी सिद्धान्तों की जानकारी न हो तो कबीर की वाणियों को
समझना भी मुश्किल है ।" 2*

डॉ0 द्विवेदी के अनुसार कबीरदास का जातीय सम्बन्ध
जुगी नाम की जाति से था, जो पहले न तो हिन्दू थी और न
मुसलमान । डॉ0 द्विवेदी के इस मत का समर्थन डॉ0 रामकुमार वर्मा

1-* डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी-कबीर, प्रस्तावना पृ024,25
2-* डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी-कबीर, पृ0 26,27

भी करते हैं ; किन्तु डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत डॉ० द्विवेदी द्वारा दिये गये निष्कर्षों का अपने तर्कों के आधार पर खण्डन करते हैं । अन्त में डॉ० त्रिगुणायत अपना निष्कर्ष देते हुए कहते हैं -"वास्तव में यह निश्चित करना कि कबीर जुलाहा जाति के रत्न थे बड़ा - कठिन है । फिर भी मेरी धारणा यही है कि कबीर जुलाहा जाति के ही रत्न थे । नीरू और नीमा ही इनके माता-पिता थे । हाँ यह अवश्य है नीमा पहले हिन्दू जाति की रमणी हो । बाद में किन्हीं परिस्थितियों के कारण उसे इस्लाम स्वीकार करना पड़ा हो । कोई आश्चर्य नहीं कि इसी आधार पर लोग उन्हें नीरू और नीमा का पोष्य पुत्र कहने लगे हों । किन्तु इस बात को मानने के लिए पुष्ट आधार नहीं है । "

इस प्रकार उपर्युक्त विद्वानों के वैदुष्यपूर्ण खोजों एवं अंतस्साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर की जाति भले ही जुलाहा न हो; परन्तु उनके जुलाहा जाति में पालन-पोषण से इन्कार नहीं किया जा सकता । उनका जन्म किसी ऐसी जाति में हुआ था, जो उस समय समाज में उपेक्षिता व नीच समझी जाती थी ।

अन्तस्साक्ष्य के आधार पर देखा जाता है कि कबीर के यहाँ जुलाहों के घर होने वाला व्यवसाय "सूत कातना व कपड़ा बुनना" प्रमुख था । उसी से वे अपना जीवनयापन करते थे तथा बाद में - चलकर उन्होंने उसका भी परित्याग कर दिया ।

1-* डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत-कबीर की विचार-धारा, पृ032

6. गुरु-

अंतस्साक्ष्य के आधार पर कबीर के गुरु का निर्धारण नहीं किया जा सकता ; क्योंकि इन्होंने कहीं भी गुरु के नाम का उल्लेख या संकेत नहीं किया है । इतना अवश्य है कि उन्होंने गुरु-महिमा का वर्णन बड़े आदरपूर्वक किया है ।

सतगुर सवाँ न को (इ) सगा, सोधी सईं न दाति ।
हरि जी सवाँ न को (इ) हितू, हरिजन सईं न जाति ।। 1*

अब हम बाह्यसाक्ष्यों पर विचार करेंगे । डॉ० मोहन सिंह की धारणा है कि कबीरदास का गुरु कोई मनुष्य नहीं था । वह गुरु का अर्थ ब्रह्म से लेते हैं, परन्तु इनका विचार स्वीकार करने योग्य नहीं है ; क्योंकि कबीर ने अपनी वाणी द्वारा - "सतगुर-महिमा" का वर्णन किया है । जिससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि कबीर का गुरु कोई मनुष्य ही था, जिसे आत्मदर्शन हुआ था । कबीर की अधोलिखित उक्तियाँ इस परिप्रेक्ष्य में देखी जा सकती हैं -

"जाका गुरु है आँधरा, चेला है जाचंध ।
अंधै अंधा ठेलिया, दोन्यूं कूप पड़ंत ।।" 2*

पाछैं लागा जाइ था, लोक वेद कै साथि ।
पैंडे मैं सतगुर मिला, दीपक दिया हाथि ।। 3*

1-* क०ग्रं०, सा० 1-2

2-* क०ग्रं०, सा० 1-6

3-* क०ग्रं०, सा० 1-14

कबीर गुर गरवा मिला, मिलि गया आटै लौंन ।
जाति पाँति सब कुल मिटे, नाँउं धरौगे कौन ।। 1*

इस प्रकार डॉ० मोहन सिंह का मत उचित नहीं है ।

जनश्रुति के आधार पर रामानंद कबीर के गुरु माने जाते रहे हैं । यह किंवदन्ती उनके जन्म के बारे में भी प्रचलित है । इसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है, पिष्टपेषण होते हुए भी पुनः उल्लेख किया जा रहा है । एक दिन एक ब्राह्मण अपनी विधवापुत्री के साथ स्वामी रामानन्द का दर्शन करने गया । स्वामी रामानंद ने उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया । कुछ समय के बाद उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई और उसने लोक-लाज के भय से उस बच्चे को तालाब के किनारे फेंक दिया । इसी कहानी में कुछ चमत्कार का भी अंश - जोड़ा जाता है और कबीर की उत्पत्ति गर्भ से नहीं, बल्कि उस - ब्राह्मण कन्या के हाथ पर निकले एक फफोले से मानी जाती है । इसीलिए लोग उनका मूल नाम "करबीर" मानते हैं । इस प्रकार लोग कबीर का सम्बन्ध रामानंद से जोड़ना चाहते हैं अथवा वे रामानंद के प्रभाव को द्योतित करने या ब्राह्मण परिवार से इनका सम्बन्ध जोड़ने के लिए ऐसा करते हैं ।

स्वामी रामानंद कबीर के गुरु थे, इस समर्थन में लोग "काशी में हम प्रगट भए हैं रामानंद चेताए" पंक्ति उद्धृत करते हैं ; परन्तु इसकी प्रामाणिकता ही संदिग्ध है ।

1-* क०ग्रं०, सा० 1-24

डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत रामानंद को ही कबीर का गुरु मानने वालों के मत से सहमत हैं और कहते हैं -"बहिस्साक्ष्य और अन्तस्साक्ष्य दोनों आधारों पर यह मत तीनों से अधिक तर्क संगत और संभाव्य मालूम पड़ता है । यह ठीक है कि कबीर ने कहीं पर भी रामानंद का नाम निर्देशित नहीं किया है । किन्तु हम केवल इस आधार पर उनको रामानंद के शिष्यत्व से वंचित नहीं कर सकते । बहुत संभव है गुरु के प्रति अत्यधिक श्रद्धा होने के कारण ही उन्होंने ऐसा किया हो । मेरी अपनी भी धारणा यही है कि कबीर रामानंद के शिष्य थे । इस धारणा की पुष्टि में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

1- कबीर और रामानंद लगभग समकालीन थे । रामानंद युग के महान आचार्य थे । ऐसे महान आचार्य को छोड़कर कबीर और किसी को गुरु नहीं बना सकते थे ।

2- रामानंद और कबीर की विचारधारा में बड़ा साम्य है । यह साम्य संभवत: इसीलिए है कि कबीर रामानंद के शिष्य थे । शिष्य का गुरु की विचारधारा से प्रभावित होना अत्यन्त स्वाभाविक है ।

3- कबीर और रामानंद के गुरु शिष्य सम्बन्ध को ध्वनित करती हुई बहुत सी किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं । किंवदंतियाँ स्वयं अतिरन्जनापूर्ण और कपोल-कल्पित होती हैं किन्तु उनका मूलाधार सत्य निर्विवाद ही होता है । अत: इस आधार पर भी कबीर और रामानंद में हम गुरु और शिष्य का सम्बन्ध मान सकते हैं ।

4- कबीर ने एक स्थल पर लिखा है -

कबीर गुरु बसै बनारसी, सिष समदां तीर ।
बिसर्या नहीं बीसरै, जे गुण होय सरीर ।।

(डॉ० श्यामसुन्दरदास-कबीरग्रन्थावली-पृ० 68)

इस साखी से स्पष्ट प्रकट होता है कि कबीर के गुरु बनारस में थे । बनारस में उस समय रामानंद से महान और कोई दूसरा आचार्य न था । अतः उन्हें कबीर का गुरु मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

5- निष्पक्ष प्राचीन विद्वानों ने कबीर को रामानंद का शिष्य माना है । इन विद्वानों में "दबिस्ताने तवारीख" के लेखक मोहसिन फानी तथा "भक्तमाल" के लेखक नाभादासजी, उनके टीकाकार प्रियादासजी तथा "तजकीरुल फुकरा" के लेखक प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त थोड़े दिन हुए श्रीशंकरदयाल श्रीवास्तव ने हिन्दुस्तानी पत्रिका में एक लेख लिखा था । जिसमें उन्होंने कबीर को रामानन्द का शिष्य सिद्ध करने के लिए किसी "प्रसंग पारिजात" नामक प्राचीन ग्रन्थ को प्रमाण रूप में उद्धृत किया था । इस ग्रन्थ के लेखक कोई अनन्तदास साधु कहे जाते हैं । अपने इस ग्रन्थ में उन्होंने - लिखा है कि स्वामी रामानन्द की वर्षी के दिन उपस्थित थे । उन्होंने कबीर को रामानन्द का शिष्य माना है । इन प्राचीन संत विद्वानों के मतों को हम अग्राह्य नहीं कह सकते । अतः रामानन्द को कबीर का गुरु कहना अनुपयुक्त नहीं है । इसीलिए हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० रामकुमार वर्मा, आचार्य डॉ० हजारी प्रसाद जी तथा डॉ० श्याम -

सुन्दर दास और डॉ० बड़थ्वाल आदि इसी मत के पक्ष में हैं " ।*

ऊपर लिये गये तर्कों पर हम निम्नांकित टिप्पणियाँ कर सकते हैं :---

1- यों तो कबीर और रामानंद के समकालीन होने में भी विवाद है ; किन्तु अगर इनको समकालीन मान भी लिया जाय तो कोई जरूरी नहीं कि कबीर ने रामानंद से ही दीक्षा ली हो, जैसा कि डॉ० त्रिगुणायत कहते हैं ।

2- रामानंद और कबीर की विचारधारा में समानता के आधार पर रामानंद को कबीर का गुरु नहीं माना जा सकता ; क्योंकि कबीर बहुश्रुत थे, इसलिए विभिन्न विचारधाराओं से उनका प्रभावित होना स्वाभाविक था ।

3- किंवदंतियों के आधार पर रामानंद को कबीर का गुरु नहीं माना जा सकता । स्वयं डॉ० त्रिगुणायत के कथन में ही विरोधाभास है ; क्योंकि वे एक तरफ तो किंवदंतियों को अतिरन्जनापूर्ण एवं कपोल-कल्पित कहते हैं ; दूसरी तरफ उनके मूलाधार को सत्य बताते हैं । जो स्वयं कपोलकल्पित एवं अतिरन्जनापूर्ण हो, उसका आधार कैसे सत्य हो सकता है ? अस्तु, इनका यह तर्क भी मानने योग्य नहीं है ।

4- उद्धृत साखी से केवल इतना ही स्पष्ट होता है कि कबीर के गुरु बनारस में थे । केवल बनारस के संकेत से रामानंद को ही कबीर का गुरु कैसे माना जा सकता है । अस्तु डॉ० त्रिगुणायत के इस तर्क से भी हम सहमत नहीं हैं ।

1-* डॉ० त्रिगुणायत-कबीर की विचार-धारा, पृ० 34,35

5- डॉ० त्रिगुणायत का यह कथन "इन प्राचीन संत विद्वानों के मतों को हम अग्राह्य नहीं कह सकते" उचित प्रतीत नहीं होता । केवल प्राचीनता के आधार पर ही हम कोई तथ्य स्वीकार नहीं कर सकते, जब तक की उसकी प्रामाणिकता सिद्ध न हो जाय ।

इस प्रकार हम डॉ० त्रिगुणायत के तर्कों से सहमत नहीं हैं; बिना किसी ठोस प्रमाण के रामानंद को कबीर का गुरु नहीं माना जा सकता ।

कुछ लोगों का विचार है कि कबीरदास सूफी फकीर शेखतकी के शिष्य थे । मौलाना गुलाम "सरवर" ने "खज़ीनतुल असफिया" में उल्लेख किया है कि शेख कबीर जुलाहा शेखतकी के उत्तराधिकारी तथा शिष्य थे । अन्तःसाक्ष्य में कबीर ने स्वयं ही अपने गुरु को बनारस निवासी कहा है । अस्तु, कड़ामानिकपुर या झूंसी निवासी शेखतकी को उनका गुरु नहीं माना जा सकता । कबीर ने अपने काव्य में कहीं भी "शेखतकी" के प्रति आदरभाव व्यक्त नहीं किया है । "घट घट है अविनासी सुनहु तकी तुम सेख " में वे उपदेशात्मक भाषा द्वारा संबोधन कर रहे हैं । इससे प्रतीत होता है कि "शेखतकी" कोई इनका प्रतिद्वन्द्वी रहा होगा न कि गुरु ।

इसके अतिरिक्त "पीताम्बरपीर" और "मति सुन्दरदास" को भी कबीर के गुरु रूप में उल्लिखित किया जाता है ; किन्तु इनकी भी प्रामाणिकता संदिग्ध है ।

इस प्रकार समुचित तथ्यों के अभाव में किसी को भी निर्विवाद रूप से कबीर का गुरु नहीं माना जा सकता । वैसे अनेक विद्वान रामानंद को ही कबीर के गुरु होने की संभावना व्यक्त करते हैं ।

7. शिक्षा-

जहाँ तक कबीर की शिक्षा का प्रश्न है । यह कहा जा सकता है कि वे अनपढ़ थे तथा उनके लिए "काला अक्षर भैंस बराबर" वाली कहावत चरितार्थ होती है ; किन्तु वे बहुश्रुत थे तथा साधु-संगति के प्रभाव से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था । अन्तर्ज्ञान में तो उन्हें पूछना ही क्या था, प्रगति के चरम कोटि पर पहुँच चुके थे । जिससे वे महान युगद्रष्टा व उपदेशक बन सके थे । वे अपने विद्याध्ययन के बारे में कहते हैं -

"बिदिआ न परउ बादु नहिं जानउ ।
हरिगुन कथत सुनत बउरानउ ।।" ।*

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि वे पढ़े-लिखे नहीं थे; परन्तु सत्संगति की उनपर अमिट छाप पड़ी थी । वे पुस्तकीय ज्ञान का तिरस्कार करते थे । उनका कहना था कि इससे अहंकार बढ़ता है और मानव-मानव के बीच दूरी बढ़ती है । पुस्तकीय ज्ञान के बारे में वे कहते हैं -

"बेद पुरान पढ़े क्या गुनु खर चंदन जस भारा ।
राम नाम की गति नहिं जानी कैसे उतरसि पारा ।।[2*]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कबीर ने शिक्षा प्राप्त नहीं की थी तथा पुस्तकीय विद्या को कभी महत्व नहीं दिया ।

1-* डॉ० रामकुमार वर्मा-संत कबीर, राग बिलावलु 2, पृ० 153
2-* क०ग्रं०, प० 191

8• पारिवारिक जीवन-

जनश्रुति के अनुसार कबीर विवाहित थे । उनकी पत्नी का नाम 'लोई' था। "लोई" के बारे में लोगों का विचार है कि वह किसी वनखंडी वैरागी की पोषित कन्या थी, जिसे उन्होंने गंगा-स्नान के समय लोई में लिपटी गंगा-जल में बहते हुए पाया था । अपने यहाँ लाकर उन्होंने पालन-पोषण प्रारम्भ कर दिया तथा "लोई में लिपटी" रहने के कारण इसका नाम उन्होंने "लोई" रखा ; जिसका कालान्तर में उनके साथ विवाह सम्पन्न हुआ । कुछ लोग "लोई" को उनकी शिष्या भी मानते हैं, जो आजीवन उनके साथ रही ।

कबीरदास के बच्चे भी थे । उनके पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था । डॉ० मोहन सिंह इनके अतिरिक्त एक पुत्र "निहाल" और एक पुत्री "निहाली" भी मानते हैं । एक पद के अनुसार कबीर की पहली स्त्री कुरूपा एवं कुलक्षणा थी ; परन्तु दूसरी रूपवती और सुलक्षणा थी ।

"पहिली करूपि कुजाति कुलखनी साहुरे पेईऐ बुरी ।
अब की सरूपि सुजानि सुलखनी सहजे उदरि धरी ।।
भली सरी मेरी पहिली बरी।जुगु जुगु जीवउ मेरी अब की धरी ।
कहु कबीर जब लहुरी आई बड़ी का सुहागु टरिओ ।
लहुरी संगि भई अब मेरे जेठी अउरु धरिओ ।।" 1*

1-* गुरुग्रन्थ साहिब-पद 32, राग आसा, पृ० 483-84

उपर्युक्त पद में दो स्त्रियों का प्रतीकार्थ भी लिया जा सकता है । पहली "माया" के अर्थ में और दूसरी "भक्ति" के अर्थ में । यही शायद कवि का मंतव्य भी है ।

एक अन्य श्लोक के द्वारा कबीर का पुत्र "कमाल" बताया गया है ।

"बूड़ा बंसु कबीर का उपजिओ पूतु कमालु ।
हरि का सिमरन छाडि के धरि ले आया मालु ।।" ।*

इसी प्रकार कमाली पुत्री की भी किंवदन्ती द्वारा पुष्टि होती है ।

कबीर "ताना बाना" छोड़कर भक्ति में तल्लीन हो गये थे, जिससे उनका पारिवारिक जीवन कलहमय हो गया था ; क्योंकि घर में आय का साधन न होने के कारण परिवार के सामने जीविका चलाने का प्रश्न आ गया था । इसी कारण उनकी माता उनसे दुःखी रहा करती थीं तथा स्त्री से भी कबीर की नहीं पटती थी, जिसका उल्लेख पहले आ चुका है ।

"तननौं बुननौं तज्यौ कबीर । रॉम नॉम लिखि लियौ सरीर ।
मुसि मुसि रोवै कबीर की माई । ए बारिक कैसे जीवहि खुदाई ।
जब लगि तागा बाहौं बेही । तब लगि बिसरे रॉम सनेही ।
कहत कबीर सुनहु मेरी माई । पूरनहारा त्रिभुअनराई ।" ।**

1-* गुरुग्रन्थ साहिब-सलोक ।15, पृ0 ।370

2-* क0ग्र0, प0 ।2

इससे स्पष्ट होता है कि कबीर के बच्चे थे, जिनके भरण-पोषण के लिए कबीर को माता चिन्तित थीं ।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि कबीर ने पारिवारिक जीवन व्यतीत किया था ।

९· पर्यटन-

कबीर प्रायः सत्संग के लिए बाहर जाया करते थे । इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण भारत एवं हज के लिए पर्यटन किया था । कबीर स्वभाव से ही घुमक्कड़ व फक्कड़ थे । अतएव पर्यटन एवं देशाटन करना स्वाभाविक ही था । बहिःसाक्ष्यों में उनकी यात्राओं का उल्लेख मिलता है । गोमती तटवाली पीताम्बर पीर के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी, जहाँ वे अक्सर जाया करते थे । जिसका उल्लेख अधोलिखित छन्द में मिलता है ।

"हज हमारी गोमती तीर । जहाँ बसहि पीतंबर पीर ।
वाह वाह क्या खूब गावता है।हरि का नाम मेरे मन भावता है ।
नारद सारद करहिं खवासी ।पास बैठी बीबी कमला दासी ।
कंठे माला जिहवा राम ।सहज नाम ले ले करउ सलाम ।
कहत कबीर राम गुन गावउ ।हिंदू तुरक दोऊ समझावउ ।" ।*

"कबीर मंसूर" में कबीर के समरकंद, बुखारे एवं बगदाद जाने का उल्लेख मिलता है । इसी प्रकार "आइने अकबरी" में जगन्नाथ-पुरी जाने का तथा "खुलासाउत्तवारीख" में रतनपुर जाने का उल्लेख

1-* डॉ० रामकुमार वर्मा- संत कबीर, राग आसा 13, पृ० 103

मिलता है । कबीर के गुजरात एवं पंढरपुर की यात्राओं का भी संकेत क्रमशः आचार्य क्षिति मोहन सेन एवं "ए हिस्ट्री आफ मरहटा पीपुल" से मिलता है । इन यात्राओं से कबीर ने बहुत ज्ञानार्जन किया होगा । परिणामतः वे इतने बड़े दार्शनिक एवं उपदेशक बन सके ।

10· मृत्यु-तिथि-

कबीरदास के जन्मतिथि की भाँति मृत्यु-तिथि भी विवादास्पद है । उनकी मृत्यु के बारे में चार दोहे प्रसिद्ध हैं, जो कबीरपंथी साहित्य तथा मौखिक परम्परा में ही प्रचलित हैं । इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है ।

1-संवत् पन्द्रह सौ पछत्तरा, किया मगहर को गवन ।
  माघ सुदी एकादशी, रलो पवन में पवन ।।

2-पन्द्रह सौ औ पांच में, मगहर कीन्हों गौन ।
  अगहन सुदी एकादसो, मिल्यो पवन में पवन ।।

3-पन्द्रह सौ उनचास में, मगहर कीन्हों गौन ।
  अगहन सुदी एकादसी, मिलो पौन में पौन ।।

4-संवत पन्द्रह सौ उनहत्तर रहाई ।
  सतगुरु चले उठि हंसा ज्याई ।।

उपर्युक्त उद्धरणों से चार मत स्पष्ट होते हैं ; किन्तु अधिकतर विद्वान प्रथम तिथि (संवत् 1575) को ही कबीर का निधन स्वीकार करने के पक्ष में हैं । इस तिथि का उल्लेख "गार्सा-द-तासी" ने भी अपने हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास में किया है । इस

तिथि का समर्थन डॉ० भण्डारकर, रेवरेण्ड वेस्टकाट, मेकालिफ प्रभृति विद्वानों ने किया है । इस तिथि को स्वीकार कर लेने से अनेक समस्याओं का समाधान हो जाता है । संवत् 1551 में सिकन्दर लोदी द्वारा कबीर को दण्डित करने की घटना की संगति बैठ जाती है तथा कबीर की आयु 120 वर्ष प्रमाणित हो जाती है और गुरुनानक, रामानंद से उनकी समसामयिकता का मेल भी बैठ जाता है ।

दूसरे दोहे के अनुसार कबीर का निधन संवत् 1505 आता है । इसका समर्थन एच० एच० विल्सन, प्रो० बी०पी० राय, आचार्य क्षिति मोहन सेन, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल और परशुराम चतुर्वेदी प्रभृति विद्वान करते हैं ।

तीसरे दोहे के अनुसार कबीर का निधन संवत् 1549 आता है । नाभादास के भक्तमाल की टीका करने वाले रूपकलाजी ने कबीर की मृत्युतिथि संवत् 1552 स्वीकार की है, जिसका समर्थन डॉ० चन्द्रबली पाण्डेय, अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" एवं डॉ० रामकुमार वर्मा करते हैं ।

चौथे दोहे के अनुसार कबीर की मृत्यु-तिथि संवत् 1569 ठहरती है । इस तिथि का समर्थन डॉ० माताप्रसाद गुप्त करते हैं ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कबीर की मृत्युतिथि अनिश्चित है ; क्योंकि उनकी मृत्युतिथि के बारे में जो भी दोहे प्रचलित हैं, वे प्रामाणिक नहीं है । किन्तु अधिकतर विद्वान संवत् 1575 को ही कबीर की मृत्युतिथि स्वीकार करते हैं ।

11. मृत्यु-स्थान-

कबीरदास का मृत्युस्थान मगहर माना जाता है । प्राय: सभी लोग इस विचार से सहमत हैं । "कबीर ग्रन्थावली" में आये एक पद के अनुसार कबीरदास जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन काशी में व्यतीत किया था ; परन्तु मृत्यु के समय वे मगहर चले गये थे । जहाँ उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ था ; पद अधोलिखित है -

"अब कहु राम कवन गति मोरी ।तजिले बनारस मति भई थोरी । टेक
ज्यौं जल छोड़ि बाहरि भयौ मीना ।पूरुब जनम हौं तप का हीना ।
सकल जनम सिवपुरी गँवाया ।मरती बार मगहर उठि आया ।
बहुत बरिस तप कीया कासी ।मरनु भया मगहर की बासी ।
कासी मगहर सम बीचारी ।ओछी भगति कैसे उतरसि पारी ।
कहु (कहि) गुर ताजि (सिव) (सी) सभको (ई-इ) जानैं ।
मुआ कबीर रमत श्रीरामैं ।" 1*

यही पद "गुरुग्रन्थ साहिब" में भी मिलता है । पद की प्रामाणिकता असंदिग्ध है । इस पद से स्पष्ट है कि कबीर अन्तिम समय में मगहर चले गये थे । उनका मगहर चला जाना उनकी प्रवृत्ति के अनुकूल था ; क्योंकि वे तीर्थव्रत एवं बाह्याडम्बर का बड़े तीव्र शब्दों में खंडन करते थे । मरणकाल सन्निकट आने पर उनका मगहर चला जाना उनके भक्ति के प्रति अटल विश्वास तथा पितृनगर के प्रति मोह को भी व्यक्त करता है; क्योंकि मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अपने जन्म-स्थान जाना चाहता है ।

1-* क०ग्रं०, प० 46

कबीर का मृत्यु-स्थान कुछ लोग अन्यत्र भी मानते हैं ; परन्तु वे प्रामाणिक नहीं हैं । अस्तु, निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कबीर की मृत्यु मगहर में हुई थी ।

कबीर का व्यक्तित्व

कबीर की वंशपरम्परा एवं उनके जीवनवृत्त का अध्ययन करने के उपरान्त कहा जा सकता है कि इनका प्रभाव भी कबीर के व्यक्तित्व पर पड़ा है । कबीर के व्यक्तित्व-निर्माण में उन्मुक्त वातावरण का सर्वाधिक योगदान रहा है । उनके व्यक्तित्व में एक अच्छे व्यक्तित्व के सभी लक्षण विद्यमान थे । इसीलिए वे समाज का कल्याण कर सके ।

साहित्यकार का व्यक्तित्व सामाजिक परिस्थितियों के द्वन्द्व से संघर्ष करता हुआ अपनी दिशा की तलाश करता है । किसी साहित्यकार के व्यक्तित्व का सही स्वरूप उसकी कृतियों में मिलता है । अस्तु, यहाँ कबीर की कृतियों में प्राप्त उनके व्यक्तित्व की झाँकी प्रस्तुत की जा रही है ।

तत्कालीन भारतीय समाज को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

1- श्रुतिशास्त्र का समर्थन करने वाला परम्परावादी समाज-जिसके रीतिरिवाज, कर्मकाण्ड तथा सामाजिक संस्कार एक खास पूर्व-पीठिका से जुड़े हुए रहते हैं (हिन्दू समाज) ।

2- हिन्दू समाज में ही वह उपेक्षित समुदाय जो ज्ञान अथवा कोई सामाजिक प्रतिष्ठा की खोज में तत्पर है (हिन्दू का पिछड़ा समाज अथवा शूद्र समाज) । वेदवेदांग इनके लिए निषिद्ध है और समाज में इनका स्थान अस्पर्शस्य है ।

3- इस्लाम धर्म से सम्बन्धित कट्टरपंथी अथवा उदारवादी समुदाय जो अपने रीतिरिवाज लेकर हिन्दू-व्यवस्था को प्रभावित कर रहा है ।

इस पूरी सामाजिक संरचना में जहाँ एक ओर जातिवाद की कट्टरता और धार्मिकता का समर्थन और कर्मकाण्डों का लम्बा विस्तार, वहीं दूसरी ओर उपेक्षित समाज का हाहाकार करता हुआ वर्ग भी है, जो अपने अस्तित्व के लिए संघर्षशील दिखायी पड़ता है ।

इन्हीं पृष्ठभूमिओं में कबीर के व्यक्तित्व का निर्माण होता है । संघर्षों से जूझता हुआ उनका व्यक्तित्व श्रुतिशास्त्र की लीक से हटकर एक नयी स्थिति का वाचक बनकर खड़ा है, जहाँ उसकी अपनी मौलिकता है । 15वीं शताब्दी के उतार-चढ़ाव एवं राजनैतिक उथल-पुथल से जुड़े हुए संघर्ष की भूमिका में कबीर ऐसे अकेले कवि हैं, जो आग्रह-रहित होकर निर्भीक अभिव्यंजना से जुड़ते हैं ; जिनके व्यक्तित्व में कहीं भी दरबारी चाटुकारिता नहीं मिलती, न ही सामन्ती विलास और शोषण के प्रति समर्थन । अपने युग का वह अकेला ऐसा कवि है, जो धर्म, जाति, रीति, नीति, संस्कार, रूढ़ि, प्रोद्योक्ति एवं भाषा कहीं भी कुरीति का समर्थन नहीं करता, जातीय संकीर्णता से जुड़े हुए इस देश में वह जाति-पाँति से ऊपर उठकर शुद्ध मानव की बात करता है ।

कबीर संत स्वभाव के थे, जिसके मूल में पवित्रता का तत्व विद्यमान है । संत ज्ञानी होता है और सात्त्विकता उसकी प्रमुख वृत्ति होती है । इसीलिए कबीर कंचन और कामिनी का निषेध करते हैं ; क्योंकि वे जानते थे कि अर्थ, नारी का शरीर ज्ञान की सबसे बड़ी बाधा है । अपरिग्रह एवं त्याग उनके जीवनवृत्ति के आवश्यक अंग हैं -

क- विषयों का त्याग
ख- अहं का त्याग ।

भक्त के दुष्कर्मों को भगवान चाहे भले ही क्षमा कर देते हैं, लेकिन संत का चरित्र कर्मों की पवित्रता और चेतनता की शुद्धि पर ही निर्मित होता है, बुरे कर्मों का परिणाम भोगना ही पड़ता है, यह कबीर मानकर चलते हैं । भक्तिकाल में हम भगवान के सामने विनयानत होकर अपने पापों के प्रति प्रार्थना कर लेते हैं । भक्ति-साहित्य के विनय के पद इसके प्रमाण हैं । लेकिन कबीर की चरित्र-मर्यादा तो शुद्ध कर्मों की पृष्ठभूमि हो रही, उसके फल भी सात्त्विक मर्यादा के हैं । इसीलिए वे बबूल का वृक्ष लगाकर आम का फल खाने की बात नहीं सोच पाते । शुद्ध मन, शुद्ध वचन, शुद्ध कर्म, शुद्ध हृदय, शुद्ध चैतन्य ही उनकी कसौटी है । संसार की पीड़ा उनकी अपनी व्यथा का भाग बनती है । वे उस पीड़ा से मुक्ति का उपाय खोजते हैं । उनके सामने कर्मकाण्ड और उससे जुड़े हुए बाह्याडम्बर के लिए कोई स्थान नहीं होता । इसी कारण वे कभी सीधे और कभी तीखी वाणी द्वारा उन रीति-रिवाजों, संस्कारों, परम्पराओं, मर्यादाओं, आदर्शों के प्रति अपनी आलोचना-वाणी प्रखर कर देते हैं, जो मानवता के विकास में रोड़े का कार्य करते हैं । मानवमात्र का कल्याण ही कबीर का पर्याय है ।

कबीर के व्यक्तित्व में संत-स्वभाव, स्पष्टवादिता, यथार्थ-वादिता, अक्खड़ता, सरलता, फक्कड़पन, क्रान्ति एवं समन्वयात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । कबीर सत्य बात को बेलाग कहते हैं, जरा भी संकोच नहीं करते तथा असत्य का बराबर विरोध करते हैं । कबीर वर्ण-व्यवस्था के विरोधी हैं तथा हमेशा मानव-कल्याण की बात करतेहैं ।

इसी प्रकार वे काजी पर भी प्रहार करने से नहीं चूकते --

"काजी तैं कवन कतेब बखौनी ।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते गति एकौ नहिं जौनीं ।
सकति सनेह पकरि करि सुनति मैं न बदउंगा भाई ।
जौ रे खुदाइ तुरुक मोहिं करता तौ आपहिं कटि किन जाइ ।
सुनति कराइ तुरुक जौ होनौ तौ औरति कौं का कहिए ।
अरध सरीरी नारि न छूटे तातैं हिंदू रहिए ।
हिंदू तुरुक कहौ तैं आए किन एह राह चलाई ।
दिल महिं खोजि देखि खोजादे भिस्ति कहां तैं आई ।
छाड़ि कतेब रांम भजु बउरे जुलम करत है भारी ।
कबीरै पकरी टेक रांम की तुरुक रहे पचि हारी ।" 1*

बाह्याडम्बर के विषय में कबीरदास का कथन अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"माला फेरें क्या भया, जौ भगति न आई हाथि ।
दाढ़ी मूंछ मुड़ाई के, चला दुनीं के साथि ।।" 2*

कर सेती माला जपै, हिरदे बहै डंडूल ।
पग तौ पाला मैं गिला, भाजन लागी सूल ।। 2**

असत्य के विरोध के कारण ही उनकी बातों में अक्खड़ता आ गयी थी । वे जाति-पाँति व उच्च-नीच भेदभावमूलक नीति के घोर विरोधी थे । ब्राह्मणवादी व्यवस्था इन बातों को प्रधानता देती थी । सामाजिक स्तर पर जाति-पाँति का पूरा बोलबाला था

1-* क0ग्रं0,प0 178 2-*क0ग्रं0,सा025-14 2-**क0ग्रं0,सा025-24

तथा उसी के अनुरूप सामाजिक स्वरूप भी था। लोगों के अन्दर ऊँच-नीच की भावना प्रबल रूप से व्याप्त थी। कबीर जानते थे कि इतने बड़े रोग का इलाज साधारण गोलियों से नहीं हो सकता, मीठी-मीठी बातों से सुधार होना सम्भव नहीं; इसीलिए वे सामाजिक विसंगति के सन्दर्भ में जब भी कोई बात कहते थे, तो फटकार लगाते थे।

स्टीफन ज़्वेग ने कहा है कि जो व्यक्तित्व जितना महान होता है, उसका उतना ही विरोध होता है। अगर इसी आधार पर कबीरदास को तौलना चाहें तो देखते हैं कि कबीर का व्यक्तित्व अद्वितीय है। इनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता उनकी मौलिकता है। ये सुनी-सुनायी बातों पर विश्वास नहीं करते, जब तक कि वे स्वयं इसका अनुभव न कर लें। वे अनुभूति को सत्य मानते हैं तथा उसे कहने में जरा भी संकोच नहीं करते। वे कहते हैं "पंडित बाद बदे सो झूठा" तथा "पंडिआ कवन कुमति तुम लागे"।

जैसा कि प्रचलित है कि कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे; परन्तु उन्हें जो भी सत्संग व देशाटन से प्राप्त हुआ, उसे अपने ढंग से निखारकर, अपने साँचे में ढालकर, अपना बनाकर तब कहते थे। कबीर के काव्य में कहीं भी कोई चालाकी नहीं दिखायी देती। वे सरल स्वभाव के थे। चालाक व्यक्ति हमेशा हर चीज को अपनी बुद्धि द्वारा आगा-पीछा सोचकर तब कहता है; परन्तु कबीर अगर उसे अपने अनुभव से ठीक समझते थे, तो उसे उसी रूप में कह देते थे। कबीर के व्यक्तित्व के बारे में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने लिखा है -"कबीर पहुँचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पोथियों की नकल नहीं था और न वह सुनी-सुनाई बातों का बेमेल भण्डार था। पढ़े-लिखे तो वे थे नहीं, परन्तु सत्संग से जो

बातें मालूम हुईं, उन्हें अपनी विचार-धारा के अनुसार मानसिक पाचन से सर्वथा अपना ही बना लेने का प्रयत्न करते थे।" उन्होंने अपने युग व समाज के जिन बातों को उपयोगी समझा उसे बेझिझक कहा। इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" ने कहा है कि "कबीरदास ने अपने विचारों के लिए कोई आधार नहीं ढूंढा, किसी ग्रन्थ का प्रमाण नहीं चाहा। उन्होंने सोचा कि जो बात सत्य है, वास्तविक है, उसकी सत्यता और वास्तविकता ही उसका प्रधान आधार है। इसके लिए किसी ग्रन्थ विशेष का सहारा क्या?"

कबीर की अक्खड़ता, फक्कड़ता और उनकी घर-फूंक मस्ती, उनकी असंतुलित मानसिकता नहीं थी, बल्कि गहन मानवीय करुणा थी। इसी से प्रेरित होकर वे व्यंग्य वचनों का प्रयोग करते थे। इसके मूल में कोई दुर्भावना नहीं थी। सामाजिक कुरीतियों को देखकर उनके हृदय में क्रान्ति की भावना जागती थी। यह उनके - व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता थी। उन्होंने समाज, दर्शन, साधना सभी क्षेत्रों में उनके कालुष्य को धो दिया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के व्यक्तित्व के बारे में लिखा है -"परन्तु वे स्वभाव से फक्कड़ थे। अच्छा हो बुरा, खरा हो या खोटा, जिससे एक बार चिपट गये उससे जिन्दगी भर चिपटे रहो, यह सिद्धान्त उन्हें मान्य नहीं था। वे सत्य के जिज्ञासु थे और कोई मोह-ममता उन्हें अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकती थी। वे अपना घर जलाकर हाथ में मुराड़ा लेकर निकल पड़े थे और उसी को साथी बनाने को तैयार थे, जो उनके हाथों अपना भी घर जलवा सके -

हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ ।
अब घर जारों तासु का, जो चले हमारे साथ ।।

वे सिर से पैर तक मस्तमौला थे । मस्त जो पुराने कृत्यों का हिसाब नहीं रखता, वर्तमान कर्मों को सर्वस्व नहीं समझता और भविष्य में सब कुछ झाड़-फटकार कर निकल जाता है । जो दुनियादारी किये-कराये का लेखा-जोखा दुरुस्त रखता है वह मस्त नहीं हो सकता । जो अतीत का चिट्ठा खोले रहता है वह भविष्य का क्रान्तिदर्शी नहीं बन सकता । जो इश्क का मतवाला है वह दुनिया के माप-जोख से अपनी सफलता का हिसाब नहीं करता । कबीर जैसे फक्कड़ को दुनिया की होशियारी से क्या वास्ता ?" ।1*

कबीर का जन्म जिस समय होता है, उस समय असत्य और मिथ्यावाद का बोलबाला था । असत्य से युद्ध करते-करते उनका स्वभाव अक्खड़, मस्तमौला एवं फक्कड़ हो गया था । जहाँ वे एक तरफ उग्रवादी दिखायी पड़ते हैं, वहीं दूसरी तरफ भक्ति के क्षेत्र में बिल्कुल विनम्र हो जाते हैं -

"कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाँउ ।
गले राम की जेवरी, जित खैंचे तित जाउं ।।" 2*

हरि जननी मैं बालक तोरा ।
काहे न अवगुन बकसहु मेरा ।।
सुत अपराध करत है जेते । जननी के चित रहैं न तेते ।।
कर गहि केस करे जो घाता ।तऊ न हेत उतारे माता ।।
कहे कबीर एक बुद्धि बिचारी ।बालक दुखी दुखी महतारी ।।-3*

1-* डॉ० द्विवेदी- कबीर, पृ० 165
2-* क०ग्रं०, सा० 6-1 3-*क०ग्रं०, प० 37

कबीर ने प्रभु-प्रेम एवं साधना के क्षेत्र में क्रमशः "सती" व "शूर" को अपना आदर्श माना है । उनके इस आदर्श को निम्नांकित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"कबीर रेख सिंदूर की, काजर दिया न जाइ ।
नैंननि प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाइ ।। 1*

सूरा सोइ सराहिए, लड़े धनी के हेत ।
पुरिजा पुरिजा होइ परे, तऊ न छाड़े खेत ।। 2*

खेत न छाड़े सूरिवां, जूझै दोउ दल मांहि ।
आसा जीवन मरन की, मन मैं आनैं नांहिं ।। 3*

कबीर की सबसे बड़ी विशेषता उनकी बुद्धिवादिता थी । हर चीज को अपनी बुद्धि पर तौलकर ही कहते थे । यह बुद्धिवादिता उनकी अनुभूति पर आधारित थी । वे तर्क करने वालों के कट्टर विरोधी थे । वे कहते थे कि तर्क द्वारा द्वैत व अद्वैत के भेद को नहीं जाना जा सकता है। वे अनुभूति के समर्थक थे । वे अपने ब्रह्म का निरूपण करते हुए कहते हैं-

"जाके मुँह माथा नहीं, नांही रूप कुरूप ।
पुहुप बास तैं पातरा, ऐसा तत्त अनूप ।।" 4*

1-* क0ग्रं0, सा0 11-13

2-* क0ग्रं0, सा0 14-12

3-* क0ग्रं0, सा0 14-13

4-* क0ग्रं0, सा0 7-7

कबीर के व्यक्तित्व में जो अक्खड़ता दिखायी पड़ती है, उसमें कहीं भी शुष्कता और नीरसता का आभास मात्र भी नहीं होता वह प्रेम से सिंचित है । कबीर के हृदय में सत्य बातों के प्रति बहुत प्रेम है । वह केवल असत्य बातों पर ही प्रहार करते हैं ।

कबीर के काव्य में कहीं-कहीं गर्वोक्तियाँ दिखायी पड़ती हैं । कुछ आलोचकों को इसमें अभिमान की झलक दिखायी पड़ती है । ये गर्वोक्तियाँ कबीरदास के अभिमान की द्योतक न होकर आत्मविश्वास की द्योतक हैं ; क्योंकि विश्वास की सामान्य अभिव्यक्ति गर्व नहीं होती। व्यक्ति का आत्मविश्वास जब अतिरेक की ओर बढ़ने लगता है तो उसे अभिमान कहते हैं । आत्मविश्वास का अतिरेक इनके काव्य में कहीं दिखायी नहीं पड़ता है । वे कभी भी लोगों को नीचा दिखाने के लिए कुछ नहीं कहते, केवल बुराइयों के प्रति उनकी सजग दृष्टि रहती है । कबीर के व्यक्तित्व में तीखापन है, अदम्य इच्छाशक्ति है । उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं है ।

डॉ० त्रिगुणायत कबीर के व्यक्तित्व पर विचार करते हुए कहते हैं -"सत्य तो यह है कि असत्य से युद्ध करते-करते ही वे कुछ चिड़चिड़े, कुछ अक्खड़, मस्तमौला और फक्कड़ हो गये थे ।" 1*

उपर्युक्त पंक्तियों में डॉ० त्रिगुणायत ने कबीर के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो "चिड़चिड़े" शब्द का प्रयोग किया है, वह उचित नहीं जान पड़ता ; क्योंकि कबीर जैसे संतुलित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति से ऐसी अपेक्षा नहीं की जा सकती । असत्य से संघर्ष करना तो उनकी नियति बन

1-* डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत-कबीर की विचार-धारा, पृ० 76

बन चुकी थी, फिर इसमें चिड़चिड़ेपन की क्या बात है ? मेरे विचार में उनके व्यक्तित्व में कहीं भी चिड़चिड़ापन नहीं दिखायी देता । कबीर ने अपने काव्य में कहीं भी कोरी भावुकता को स्थान नहीं दिया ।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर के व्यक्तित्व के बारे में कहते हैं -"ऐसे थे कबीर । सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय ।" 1*

कबीर के व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि उनका व्यक्तित्व क्रान्तिकारी , अक्खड़, असमझौतावादी (कुरीति के परिप्रेक्ष्य में), आक्रामक, सरल, विनम्र, कर्तव्य-परायण, फक्कड़, मस्तमौला, स्पष्टवादी, यथार्थवादी, सारग्राही एवं समन्वयात्मक है । अच्छी चीजों को ग्रहण कर लेना तो उनके संत-स्वभाव के ही अनुकूल है । उनके काव्य में सर्वत्र समन्वयात्मक प्रवृत्ति देखी जा सकती है, केवल कुरीतियों से वे समझौता नहीं करते । वे धर्म के क्षेत्र में-हिन्दू, मुस्लिम धर्म, दर्शन के क्षेत्र में - द्वैतवाद, अद्वैतवाद, साधना के क्षेत्र में -हठयोग, भक्ति, सामाजिकता के क्षेत्र में - हिन्दू, मुस्लिम जातियों का, भाषा के क्षेत्र में -पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी हिन्दी, भोजपुरी और साहित्य के क्षेत्र में -मानक साहित्य एवं लोक साहित्य का समन्वय करते हैं । कबीर जैसा विशाल एवं महिमामंडित व्यक्तित्व पूरे हिन्दी साहित्य में दिखायी नहीं पड़ता । ऐसे सशक्त व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी काव्यशैली पर पड़ना स्वाभाविक है ।

1-* डॉ० द्विवेदी-कबीर, पृ० 174, 175

कबीर के व्यक्तित्व का उनकी शैली पर प्रभाव

साहित्यकार का जैसा व्यक्तित्व होगा उसी के अनुरूप उसकी शैली भी होगी । शैली उसके व्यक्तित्व की सच्ची अनुकृति होती है । इसीलिए शैली के द्वारा साहित्यकार का परिचय मिलता है । कबीर का जैसा व्यक्तित्व है, ठीक उसी प्रकार की उनकी शैली भी है । शायद इसीलिए उन्होंने भाषा को अपने सरल स्वभाव के अनुकूल ही ग्रहण किया । वे भलीभाँति जानते थे कि जनता की भाषा में ही जनता को समझाया जा सकता है । जनता में अप्रयुक्त भाषा द्वारा जो बात कही जायेगी, उसे जनता सही रूप में हृदयंगम नहीं कर पायेगी, भले ही वह भाषा कितनी महान क्यों न हो ।

कबीर के अप्रतिम व्यक्तित्व के अनुरूप उनकी शैली भी अप्रतिम है ; उदाहरणार्थ -

साधु भया तो क्या भया, बोले नाँहिं बिचार ।
हते पराई आतमाँ, जीभ बाँधि तरवारि ।। 1*

जे तूं तुरक तुरकिनीं जाया । तो भीतरि खतना क्यूं न कराया ।। 2*

उद्धृत छन्द में कबीर ने कहा है कि साधु होने से क्या ? अगर वह विचारकर नहीं बोलता और दूसरे जीवों को कष्ट पहुँचाता है ।

वे तुर्क को सम्बोधित कर कहते हैं कि अगर तुम केवल किसी परिवार विशेष में जन्म लेने से अपने को मुसलमान समझते हो तो फिर

---

2 -* क०ग्रं०, प० 182
1 -* क०ग्रं०, सा० 15-15

गर्भ में ही तुम्हरा जनना क्यों नहीं हुआ ? भला इन तर्कों एवं प्रश्नों का उत्तर साधु व तुर्क क्या दे सकते हैं ? उनके व्यंग्य को न चाहकर भी लोगों को स्वीकार करना पड़ता है ; क्योंकि उनके लिए कोई विकल्प नहीं रह जाता ।

कभी-कभी वे अपने छन्दों में प्रश्न के रूप में भी व्यंग्य भरते हैं ; उदाहरणार्थ -

केसों कहा बिगारिया, जे मूड़े सौ बार ।
मन कौं काहे न मूड़िए, जामैं बिषै बिकार ।। [1*]

वे अपने सरल स्वभाव के अनुकूल सरल, सीधी उक्तियों का व्यवहार करते हैं ; यथा-

"भजि गोबिंद भूलि जनि जाहु ।
मनिषा जनम कौ एही लाहु ।।

गुर सेवा करि भगति कमाई ।जौ तैं मनिषा देही पाई ।।
या देही कौं लोचैं देवा । सो देही करि हरि की सेवा ।। [2*] "

कबीरदास जीवन की कृत्रिमता से सदैव दूर रहे; जैसे भीतर वैसे बाहर । वे सरल जीवन के पक्षधर थे । उनकी यह सरलता उनकी शैली में भी उसी प्रकार है । उनके कथन में ईमानदारी की शक्ति है । इसी-लिए उनकी भाषा की धार श्रोता को तिलमिला देने वाली है ।

1-* क०ग्रं०, सा० 25-4

2-* क०ग्रं०, प० 63

कबीर के जीवन में जो सादगी, पवित्रता निहित है, उसकी छाप उनकी काव्य-शैली में भी दिखायी देती है। उनकी श्रृंगार रस की योजनाओं में कहीं भी मांसलता के दर्शन नहीं होते तथा वासना की दुर्गंधि नहीं आती।

उदाहरणार्थ - रैनि गई मत दिनु भी जाइ।
भंवर उड़े बग बैठे आइ।।
थरहर कंपै बाला जीउ। नाँ जानौं क्या करिहै पीउ।।
कांचै करवै रहै न पानीं। हंस उड़ा काया कुम्हलानीं।।
कउवा उड़ावत भुजा पिरानीं। कहै कबीर यहु कथा सिरांनीं।।[1*]

उद्धृत छन्द में कवि ने मुग्धा नायिका के प्रतीक द्वारा यह प्रदर्शित करना चाहा है कि जीव अपनी युवावस्था को संकल्प-विकल्प में ही व्यर्थ गवाँ देता है, प्रभु से मिलन नहीं हो पाता और प्रेम-कथा का यों ही अन्त हो जाता है।

जिस प्रकार वे असत्य बातों को नकारते थे। यह नकार की प्रवृत्ति उनकी भाषा-शैली में भी विद्यमान है। यह उनकी शैली की एक प्रमुख विशेषता के रूप में आयी है। उदाहरणार्थ -

"तब नहिं होते पवन न पानीं। तब नहिं होती सिस्टि उपानीं।।
तब नहिं होते पिंड न बासा। तब नहिं होते धरनि अकासा।।
तब नहिं होते गरभ न मूला। तब नहिं होते कली न फूला।।
तब नहिं होते सबद न स्वादा। तब नहिं होते बिद्या न बेदा।।
तब नहिं होते गुरु न चेला। राम अगम यहु पंथ अकेला।।" [**]

1-* क0ग्रं0, प0 70   1-** क0ग्रं0, र0 4

*
अध्याय-2
* * *
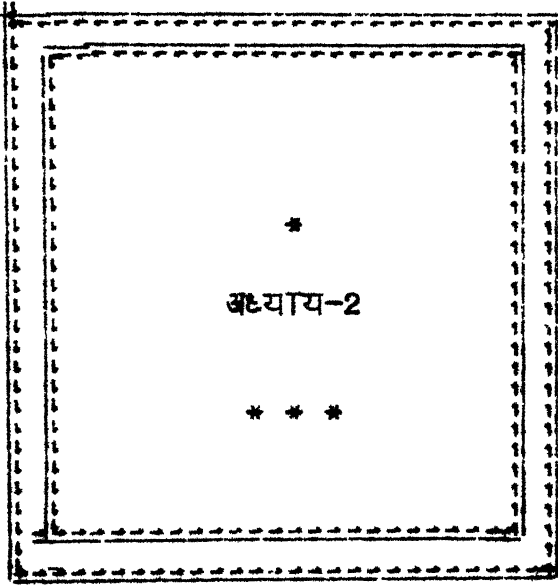
कबीर की शैली के आधार तत्व

च- कबीर का कृतित्व

छ- कबीर की काव्यभाषा

***

*

क- कबीर का कृतित्व

*

रचनाएँ एवं उनकी प्रामाणिकता

कबीर के विषय में प्रसिद्ध है कि उन्होंने "मसि कागद" का स्पर्श तक नहीं किया था अर्थात् वे अनपढ़ एवं निरक्षर थे। कबीरदास ने स्वयं किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की थी। इसलिए उनके नाम पर विपुल साहित्य का प्रचलित हो जाना कोईआश्चर्य की बात नहीं है। कुछ साहित्य उनके अनुयायियों द्वारा लिपिबद्ध किया गया होगा तथा कुछ लोक-कंठ में सुरक्षित रहता हुआ अपना स्वरूप परिवर्तित करता रहा होगा। इतने विपुल साहित्य को हम असंदिग्ध भाव से प्रामाणिक नहीं कह सकते। प्रामाणिकता की समस्या वहाँ और उलझ गयी है, जहाँ कबीर के अनुयायियों द्वारा उनकी अतिरंजनात्मक - प्रशस्तियाँ की गयी हैं। उनके मूल में श्रद्धा की ही अभिव्यक्ति अधिक हुई है, तथ्यों की कम। अस्तु, वे कबीर के व्यक्तित्व एवं उनकी रचनाओं का सही चित्र हमारे सामने प्रस्तुत नहीं करती हैं। कबीर के भक्तों ने न केवल कोरी प्रशंसा की, अपितु कबीर के नाम पर प्रचुर साहित्य लिखकर प्रचारित भी किया। परिणामत: कबीर और कबीर-पंथी साहित्य घुलमिलकर एक हो गया। इतने विपुल साहित्य में "कबीर वाड्•मय" को अलग करना अपने आप में टेढ़ी खीर है; क्योंकि आज तक कोई भी प्रति स्वयं कबीरदास के हाथ की लिखी हुई प्राप्त नहीं होती और न ऐसे किसी ग्रन्थ का पता चलता है जो उनके जीवन-काल में ही लिपिबद्ध कर लिया गया हो।

कबीरपंथियों का तो यहाँ तक कहना है कि "सदगुरु की वाणियों का कहीं अन्त नहीं है"। इसलिए उनकी संख्या निर्धारित करने में वे असमर्थ हैं; परन्तु जो लोग पंथ के अनुयायी नहीं हैं, वे

इस तर्क से सहमत नहीं हैं और उन्होंने उनकी रचनाओं की प्रामाणिकता पर विचार किया है ।

कबीरदास को अशिक्षित एवं निरक्षर सिद्ध करने की परिपाटी बहुत दिनों से चली आ रही है ।

"मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ ।
चारिउ जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात ।।" 1*

उपर्युक्त छन्द में कबीर ने कहा है कि न तो मैंने कभी हाथ में कलम ग्रहण की और न कभी कागज और स्याही का स्पर्श ही किया । चारों युगों का महात्म्य मैंने मुख से ही वर्णित किया । परन्तु इस छन्द से कबीर की निरक्षरता प्रमाणित नहीं होती । इससे तो केवल इतना ही ज्ञात होता है कि कबीर ने मौखिक उपदेशों द्वारा ही सारे महात्म्य का वर्णन किया, इसके लिए उन्होंने उन्हें लिपिबद्ध करने की आवश्यकता नहीं समझी ।इससे स्पष्ट है कि कबीर ने अपनी वाणियों को स्वयं लिपिबद्ध नहीं किया । अगर वे लिखने में समर्थ भी रहे होंगे तो भी उन्होंने मौखिक प्रवचनों को ही अधिक महत्त्व दिया होगा । वे सत्संग एवं प्रवचनों के अवसर पर अपनी अमूल्य वाणी व्यक्त करते रहे होंगे और उन्हें अनेक अनुयायी या श्रोताओं में से कुछ लोग लिपिबद्ध कर लेते रहे होंगे ; परन्तु इस लेखन में आयी अनेक विसंगतियों से इन्कार नहीं किया जा सकता । कभी-कभी लेखक को अस्पष्ट सुनायी देने के कारण तथा कभी उसकी स्वयं की अज्ञानतावश तथा कभी गूढ़ - रहस्यों की बात करते समय कबीरदास की भाषा से पूर्ण परिचय न होने के कारण अपनी ही समझ से कुछ परिवर्तन कर लेने के कारण विकृतियों

1--कबीर साहब का बीजक, कबीर ग्रन्थ प्रकाशन समिति, पृ0 190

का आ जाना स्वाभाविक ही था । कबीरदास की रचनाएं लिपिबद्ध होते समय ही विभिन्न रूप धारण करती रही होंगी, इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता । उन्हीं में से कौन प्रामाणिक हैं तथा रचनाओं की संख्या कितनी है इसका पता लगाना कठिन कार्य है । फिर भी कबीर की रचनाओं की प्रामाणिकता एवं उनकी संख्या के विषय में 18वीं शताब्दी से ही कार्य प्रारम्भ हो गया ।

कबीर की कृतियों के सम्बन्ध में जिन लेखकों ने अलग-अलग विचार प्रस्तुत किये हैं, उनमें एच० एच० विल्सन, डॉ० एफ० ए० की, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल और डॉ० रामकुमार वर्मा प्रमुख हैं । वैसे तो कबीर की साहित्यिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में बहुतों ने लिखा है ; लेकिन रचना की प्रामाणिकता अथवा रचना वैशिष्ट्य के सन्दर्भ में उपर्युक्त विद्वानों ने ही टिप्पणियाँ दीं ।

एच०एच० विल्सन द्वारा संवत् 1903 में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "रेलिजस सेक्ट्स आफ दि हिन्दूज" में कबीर की आठ रचनाओं का उल्लेख होता है -

1. आनन्द रामसागर
2. वलख की रमैनी
3. चाँचरा
4. हिंडोला
5. झूलना
6. कबीर पंजी
7. कहरा
8. शब्दावली ।

परन्तु "रेवरेंड वेस्टकॉट" ने संवत् 1966 में इनकी संख्या में वृद्धि करके 82 कर दिया । इसमें अलिफनामा और बीजक की गणना तीन-तीन बार कर दी गयी है । अगर हम इस विसंगति को दूर कर दें तो रचनाओं की कुल संख्या 78 ठहरती है । मिश्रबन्धुओं ने "हिन्दी नवरत्न" ‡1925 ई0‡ में 75 ग्रन्थों की तालिका दी है तथा "मिश्र बन्धु विनोद" ‡1929 ई0, तृतीय संस्करण‡ में 84 ग्रन्थों की । डॉ0 एफ0ए0की ने 1931 ई0 में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "कबीर एण्ड हिज़ फालोवर्स" में कबीरपंथी साहित्य का उल्लेख करते हुए 38 कृतियों का उल्लेख किया है । इस दिशा में दूसरा महत्वपूर्ण कार्य डॉ0 रामकुमार वर्मा ने अपने ग्रन्थ "संत कबीर" ‡सन् 1943‡ में किया है । काशी से प्रकाशित नागरी प्रचारिणी सभा के सन् 1922 ई0 तक के खोज-विवरण को ध्यान में रखकर डॉ0 वर्मा ने 85 रचनाओं का उल्लेख किया है तथा उन्होंने स्वतंत्र ग्रन्थों के रूप में 56 रचनाओं का समर्थन किया है । "गुरु ग्रन्थ साहब" को आधार बनाकर उसमें प्राप्त कबीर के नाम से संगृहीत छन्दों को स्वीकार करते हुए डॉ0 वर्मा ने "संत कबीर" का संपादन किया । इसके उपरान्त अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" द्वारा सन् 1916 में अपने ग्रन्थ "कबीर वचनावली" में कबीर की प्रामाणिक रचनाओं को कबीरपंथी साहित्य से अलग करने का प्रयत्न किया गया । इसके बाद बाबू श्यामसुन्दर दास द्वारा संपादित "कबीर ग्रन्थावली" का उल्लेख आता है, जिसका सम्पादन उन्होंने सन् 1928 ई0 में संवत् 1561 एवं 1881 की दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर किया था । सन्1936 में डॉ0 पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने अपनी पुस्तक "दि निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री" के परिशिष्ट में वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित तथा युगलानंद द्वारा सम्पादित "कबीर सागर" तथा "बोध सागर" नामक ग्रन्थों का उल्लेख करते हैं । डॉ0 बड़थ्वाल ने इन पूरी रचनाओं

को छः - सात वर्गों में विभाजित कर जिन 40 पुस्तकों का उल्लेख किया है, उनकी सीमाएँ अलग-अलग हैं । इस दिशा में सबसे महत्व-पूर्ण सन्दर्भ वह है जहाँ विश्वभारती शान्ति निकेतन में संगृहीत आचार्य क्षितिमोहन सेन से सम्बन्धित छन्दों का भी उल्लेख करते हुए डॉ० बड़थ्वाल कबीर की साहित्यिक कृति का उल्लेख करते हैं । बेलवेडियर प्रेस से छपी चार पुस्तकों तथा वेंकटेश्वर प्रेस से छपी साखी का पहली बार उल्लेख डॉ० बड़थ्वाल द्वारा होता है । यहीं पर "आदि ग्रन्थ", "बीजक" एवं "कबीर-ग्रन्थावली" के संस्करणों का पहली बार उल्लेख होता है । कबीर के सम्बन्ध में प्रामाणिक सन्दर्भों के उल्लेख नहीं हुए हैं । इनके नाम से प्राप्त रचनाएँ किसी न किसी परम्परा से जुड़ी हैं । इनमें "आदि ग्रन्थ" सिक्खों का धर्मग्रन्थ है । इसी को "गुरु ग्रन्थ साहब" भी कहा गया है । संवत् 1661 में इनमें कबीर से प्राप्त छन्दों का अलग से संग्रह होता है । इसी तरह "कबीर-बीजक" और कबीर-साखियों का भी किसी न किसी धार्मिक परम्परा से सम्बन्ध जोड़ा गया है, लेकिन इनके संग्रहकाल में आये पदों का स्वरूप तथा इनकी प्रामाणिकता तय नहीं है । इस प्रसंग में तीसरा नाम -कबीर-ग्रन्थावली" का है, जिसे संग्रह ही माना जा सकता है तथा जिन प्रतियों का आधार बनाकर ग्रन्थावली का सम्पादन हुआ है, उनकी प्रामाणिकता अब भी निर्विवाद नहीं है । इन अलग-अलग सन्दर्भों में (आदि ग्रन्थ, बीजक और ग्रन्थावली) जो छन्द प्राप्त हुए हैं, उनकी संख्या संग्रहों में अलग-अलग है । छन्दों में भाषिक परिवर्तन अथवा पाठान्तर बहुत प्राप्त हुए हैं । इन संग्रहों में जो कुछ मिलता है, उनमें साखियाँ और रमैनियाँ ही अधिक हैं । पदों में पर्याप्त उलटफेर दिखायी पड़ता है । इन सारे सन्दर्भों के भीतर प्राप्त साखियों, पदों और रमैनियों का - उल्लेख "पंचवानी", "सर्वंगी" तथा "आदि ग्रन्थ" में होता है । इनके अतिरिक्त "कबीर बीजक", "कबीर की बानी" तथा "सत्य कबीर की

साखी" नाम से स्वतंत्र संग्रह भी प्राप्त होते हैं । "संतगाथा" नाम से पूना से एक संग्रह प्रकाशित हुआ है, जिसमें भी कबीर की वाणियां मिलती हैं । यह किंवदन्ती प्रचलित है कि "सर्वंगी" और "गुणगंजनामा" का प्रकाशन तथा संग्रह संवत् 1601 से लेकर 1660 के बीच संत दादू दयाल के दो शिष्यों (रज्जबजी, जगन्नाथ जी), द्वारा उनके जीवन-काल में ही हुआ था । इन संग्रहों में भी कबीर के नाम से जो छन्द मिलते हैं, उनकी भाषा में इतनी विविधता है कि इन्हें प्रामाणिक मानने में कठिनाई होती है । इन सारे सन्दर्भों को भाषा, विषयवस्तु की दृष्टि से आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने तीन [1*] वर्गों में बांटा है -

क- पूर्वी प्रभावित कृतियां

ख- राजस्थानी प्रभावित कृतियां और

ग- पंजाबी प्रभावित कृतियां ।

"कबीर-कसौटी" नामक एक ग्रन्थ में कबीर पंथी रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है, जहां बीजक की चर्चा करते हुए उसकी प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाया गया है । "सर्वंगी", "गुणगंजनामा" के अतिरिक्त "दादू-पंथ" और "निरंजनी सम्प्रदाय" के लोगों ने "पंचबानी" का भी संग्रह प्रकाशित किया है । "पंचबानी" एवं नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित "ग्रन्थावली" के पाठ में बहुत अन्तर नहीं है । दोनों ही संग्रहों में साखियों के अंगों तथा रागों के आधार पर विभाजन किया गया है । इसीलिए "पंचबानी" का बहुत महत्व नहीं होता ।

1-* आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-
कबीर-साहित्य की परख, पृ0 86

कबीर के नाम से जो प्रकाशित रचनाएं उपलब्ध हैं :-

1- कबीर साहब की शब्दावली
2- कबीर के पद
3- साखियां
4- बीजक
5- संत कबीर
6- कबीर-ग्रन्थावली,

इनके अलावा भी कुछ छोटे संग्रह भी मिलते हैं ।

कबीर के नाम से प्राप्त इन रचनाओं को आधार बनाकर अयोध्यासिंह उपाध्याय"हरिऔध" ने"कबीर वचनावली" डॉ० रामकुमार वर्मा ने "कबीर पदावली", नरोत्तम स्वामी ने "कबीरदास" तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी ने "कबीर" का प्रकाशन किया, जिनमें कबीर की वाणियां संगृहीत हैं । सुविधानुसार इन प्रकाशित रचनाओं को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है ।

§1§ शब्दावली तथा पदावली-

जिसके भीतर कबीर के नाम से प्रचलित सबदों अथवा पदों का संशोधित संग्रह किया गया है । आचार्य क्षिति मोहन सेन द्वारा संगृहीत पद चार भागों में विभाजित हैं ।

§2§ साखियां -

कबीर की साखियों के कई संग्रह प्रकाशित हैं ।
1- साखी संग्रह- बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग

2- सत्य कबीर की साखी - सं0 युगलानन्द

3- कबीर साहब की साखी- सं0 विचारदास ।

पदों की निश्चितता और साखियों की प्रामाणिकता को लेकर तार्किक समर्थन नहीं है । सिवहर निवासीवक्सीगोपालदास को संवत् 1600 की एक प्रति प्राप्त हुई है, जिसके आधार पर युगलानंद के पाठ का समर्थन होता है । साखियों का एक संग्रह बम्बई से गुजराती में प्रकाशित हुआ, जो 101 अंगों में विभाजित है तथा निर्विवाद नहीं है ।

(3) बीजक-

कबीरमठ में बीजक का नाम बड़े आदर से लिया जाता है । इसे धार्मिक महत्व प्राप्त है । बीजक मूलग्रन्थ है, जिसमें कबीर की रचनाएं संगृहीत हैं । बीजक की बहुत टीकाएं मिलती हैं । इन टीकाकारों में रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह जू देव, पूरनदास, प्रेमचन्द, अहमदशाह, काशीदास, विचारदास, राघवदास, हनुमानदास और हंसदास उल्लेखनीय हैं । इतनी अधिक टीकाओं के आधार पर कबीर-साहित्य का महत्व आंका जा सकता है । किन मूल प्रतियों को आधार बनाकर बीजक का सम्पादन हुआ, इसकी चर्चा नहीं मिलती । वेस्टकाट ने "कबीर एण्ड हिज फालोवर्स " में बीजक की चर्चा करते हुए मुर्शिदाबाद से प्राप्त होने वाली एक प्रति का उल्लेख किया है ; लेकिन वह प्रति भी आज प्राप्त नहीं है । अहमदशाह के प्रकाशन का आधार बीजक के ही पांच मुद्रित संस्करण रहे हैं, जो आज अप्राप्त हैं । इस परम्परा में विश्वनाथ सिंह जू देव का बीजक सबसे पुराना माना जाता है । यह प्रसिद्ध है कि कबीर के युग में उनके शिष्य धर्मदास ने संवत् 1561 में कोई प्रति लिखी थी, जो रीवा नरेश के पास अब भी रखी है ।

डा0 एफ0ए0 की ने इस प्रति के सम्बन्ध में आगे चलकर काफी पूछताछ

की पर अब तक वह अप्राप्त है । अपनी टीका में रीवा नरेश ने लिखा है -"पोथी पन्द्रह से यकईस साल की धर्मदास के हाथ की लिखी है ।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्मदास का नामोल्लेख उचित है, लेकिन इसकी तिथि अब भी अप्रामाणिक है । इसलिए परवर्ती आलोचकों ने इसका समर्थन नहीं किया ।

इस पूरे निष्कर्ष के बाद कबीर के तीन मान्य ग्रन्थ सामने आते हैं -

1- बीजक

2- आदि ग्रन्थ

3- खेमचन्द के लिए लिखी गयी बानी ।

कबीर की मौखिक वाणी की तीन स्वतंत्र परम्पराएं आगे विकसित हुई और आगे चलकर उनके तीन अलग-अलग संस्करण सामने आये ।यद्यपि यह कहना कठिन है कि मुख्य परम्परा से प्रचलित ये सारे पद इन संग्रहों में आ ही गये हैं । डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इन्हें पश्चिमी, पूर्वी, उत्तरी का नाम दिया है । डॉ० गुप्त के वर्गीकरण का आधार इन तीनों परम्पराओं में प्राप्त होने वाली भाषा है ।

कबीर-साहित्य की प्रामाणिकता और पाठ-निर्धारण के सम्बन्ध में मुख्य रूप से साहित्यिक विद्वानों एवं कबीर-पंथी साधुओं द्वारा कार्य हुए हैं । इसी परिप्रेक्ष्य में हम कबीर के उन रचना-संस्करणों पर विचार करेंगे, जो प्रामाणिकता की दिशा में महत्वपूर्ण कड़ी हैं, जिन्हें क्रमशः आगे लिया जा रहा है :-

1- कबीर वचनावली -सं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"
सन् 1916 ई०

2- कबीर-ग्रंथावली- सं0 श्यामसुन्दर दास, सन् 1928 ई0
3- संत कबीर- सं0 डॉ0 रामकुमार वर्मा, सन् 1943 ई0
4- कबीर-ग्रंथावली-सं0 डॉ0 पारसनाथ तिवारी, सन् 1961 ई0
5- कबीर-ग्रंथावली- सं0 डॉ0 माताप्रसाद गुप्त, सन् 1969 ई0
6- कबीर बीजक- सं0 डॉ0 शुकदेव सिंह, सन् 1971 ई0
7- रमैनी -सं0 डॉ0 जयदेव सिंह, डॉ0 वासुदेवसिंह, सन् 1974ई0

1. कबीर वचनावली- (सं0 "हरिऔध") -

"कबीर वचनावली" की भूमिका में अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" ने लिखा है -"मुझे कबीर साहब के मौलिक ग्रन्थों में से केवल दो ग्रन्थ मिले, एक "बीजक" और दूसरा" चौरासी अंग की साखी"। इनके अतिरिक्त वेलवेडियर प्रेस की छपी "कबीर-ग्रन्थावली" चार भाग, "ज्ञान गुदड़ी" व "रेख्ते" और "साखी संग्रह" नाम की पुस्तकें भी हस्तगत हुईं। वेलवेडियर प्रेस के स्वामी "राधास्वामी मत" के हैं। इस मत वाले कबीर साहब को अपना आदि आचार्य मानते हैं, इसलिए इस प्रेस की छपी पुस्तकों के बहुत कुछ प्रामाणिक होने की आशा है। उन्होंने भूमिका में इस बात को प्रकट भी किया है। गुरुनानक सम्प्रदाय के "आदि ग्रन्थ" में भी कबीर साहब के बहुत से शब्द और साखियाँ संगृहीत हैं। मैंने उक्त दो मौलिक और इन्हीं सब संगृहीत ग्रन्थों के आधार पर अपना संग्रह प्रस्तुत किया है।" 1*

स्वयं हरिऔधजी की ही बातों से स्पष्ट है कि "कबीर वचनावली" का सम्पादन करते हुए उन्होंने दो प्रतियों का सहारा लिया=

1-* सं0 अयोध्यासिंह उपाध्याय"हरिऔध"-कबीर वचनावली, पृ0 30

प्रथम है बीजक एवं द्वितीय "चौरासी अंग की साखी"; परन्तु उन्होंने इन आधार ग्रन्थों के लिपिकाल के बारे में न कहीं संकेत दिया है, न ही उनकी प्रामाणिकता के बारे में, न ही पाठ-निर्धारण की किसी वैज्ञानिक पद्धति का ही उल्लेख किया है । "हरिऔधजी" ने अपने ग्रन्थ का सम्पादन करते समय इन दो आधार ग्रन्थों तथा अन्य ग्रन्थों से सामग्री का चयन किस प्रकार किया तथा उसकी प्रामाणिकता की छान-बीन के लिए कौन से मापदण्ड अपनाये, इसका उन्होंने कहीं भी उल्लेख नहीं किया है । उन्होंने जो आगे कहा है कि "वेलवेडियर प्रेस के स्वामी "राधास्वामी मत" के हैं । इस मत वाले कबीर साहब को अपना आदि आचार्य मानते हैं, इसलिए इस प्रेस की छपी पुस्तकों के बहुत कुछ प्रामाणिक होने की आशा है ।" इसमें हरिऔधजी का स्वयं का विश्वास ही कहा जा सकता है । इस प्रकार हरिऔधजी ने सामग्री के चयन में एक सामान्य दृष्टि अपनायी; जिसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता । इसमें 781 साखियाँ एवं 228 पद संगृहीत हैं ।

2. कबीर-ग्रंथावली- (सं० श्यामसुन्दर दास)-

ग्रन्थावली का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा से सन् 1928 ई० में हुआ । सम्पादक ने अपनी भूमिका में ग्रन्थावली के सम्पादन का आधार दो हस्तलिखित प्रतियों को माना है । उनके अनुसार "कबीर-दास के ग्रन्थों की इन दो प्रतियों में से एक तो संवत् 1561 की लिखी है और दूसरी संवत् 1881 की ।" 1*

दूसरी प्रति में पहली प्रति की अपेक्षा 131 दोहे और 5 पद अधिक हैं । इन दोनों प्रतियों के अतिरिक्त संवत् 1661 में संकलित "गुरु ग्रन्थ साहिब" में संगृहीत कबीर की वाणियों को भी "कबीर -

---

1-* सं० डॉ० श्यामसुन्दर दास-कबीर-ग्रन्थावली, प्र०सं० की भूमिका,पृ०1

ग्रन्थावली" के सम्पादन में डॉ० श्याम सुन्दर दास ने आधार बनाया है। "गुरुग्रन्थ साहिब" में संकलित कबीर के जो दोहे और पद उक्त दोनों प्रतियों में भी थे, उन्हें मूल रूप में सम्मिलित कर लिया गया है और शेष को परिशिष्ट में। संवत् 1561 की हस्तलिखित प्रति से विदित होता है कि उसके अन्त में दी हुई एक पुष्पिका के अनुसार यह प्रति मलूकदास ने खेमचन्द के पढ़ने के लिए काशी में लिखा था तथा बाबू श्यामसुन्दर दास ने मलूकदास को कबीर के शिष्य एवं संत होने की सभावना व्यक्त किये हैं। ग्रन्थावलीकार के अनुसार कबीर की मृत्यु का समय संवत् 1575 है। अतः यह प्रति कबीर की मृत्यु से 14 वर्ष पूर्व लिखी गयी। इस कारण इसका महत्त्व विशेष हो जाता है। दूसरी प्रति संवत् 1881 की है। दोनों प्रतियों में पाठ की समानता है। संवत् 1561 की प्रति के अन्त में दो हस्तलिपियों का लेख तथा अन्तर देखकर विद्वानों ने इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में सन्देह व्यक्त किया है। इसी तरह "इतिश्री कबीरजी की वाणी सम्पूरण समाप्तः" लिखने के बाद आगे "सम्पूर्ण संवत्" "सम्पूर्ण" के दो पाठान्तर मिलते हैं और ये दोनों पाठान्तर यह सिद्ध करते हैं कि प्रति के अन्त की लिखावट किसी बुद्धिमान व्यक्ति की है। इस तर्क के आधार पर भी प्रति के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हो जाता है। डॉ० रामकुमार वर्मा और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस प्रति के अन्तिम लेख को आलोचना का विषय बनाते हुए कुछ और तर्क भी प्रस्तुत किया है। डॉ० वर्मा का कहना है कि -

1- मूल प्रति में य, व वर्णों के नीचे बिन्दु लगा है, लेकिन पुस्तिका में जहाँ य, व आता है, वहाँ बिन्दु नहीं है।

2- मूल रचना में दोष शब्द में मूर्धन्य षकार लिखा हुआ है, जबकि प्रति में तालव्य। डॉ० पी०डी० बड़थ्वाल डॉ० वर्मा के ही मत का समर्थन करते हैं तथा इस प्रति को किसी राजस्थानी लिपिकार द्वारा

लिखा मानते हैं । संवत् 1881 वाली प्रति की अन्तिम पंक्ति में भी सम्पूर्ण के दो पाठ "सम्पूरण" एवं "सम्पूर्ण" मिलते हैं । इस पाठान्तर से इस प्रति के प्रति भी सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक है । प्रतियों के प्रति चाहे कितनी भी शंका उठायी जाय ; परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बाबू श्यामसुन्दर दास ने साहित्यिक क्षेत्र में प्रामाणिक पाठानुसंधान की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है । कबीर-ग्रन्थावली में कुल 809 साखियां, 403 पद, 7 रमैनियां संगृहीत हैं । इनके अतिरिक्त परिशिष्ट में 192 साखियां और 222 पद और दिये गये हैं ।

3· संत कबीर {डॉ० रामकुमार वर्मा}-

इसका सम्पादन "गुरु ग्रन्थ साहिब" के आधार पर हुआ है। डॉ० वर्मा ने "गुरु ग्रन्थ साहिब" के पाठ को अधिक विश्वसनीय माना है तथा "गुरु ग्रन्थ साहब" का संकलन पाँचवें गुरु श्री अर्जुन देव द्वारा संवत् 1661 में बताया है । डॉ० वर्मा का विचार है कि "गुरु ग्रन्थ साहब" चूंकि सिक्खों का धार्मिक ग्रन्थ था, इसलिए किसी ने उसे विकृत करने की बात तो दूर रही स्पर्श तक करने की कोशिश न की होगी । डॉ० वर्मा का यह विचार अपने आप में शतप्रतिशत सत्य है ; परन्तु उन्होंने केवल एक ही पहलू पर विचार किया, दूसरे पर नहीं । डॉ० वर्मा कबीर की मृत्यु संवत् 1575 मानते हैं । कबीर की मृत्यु संवत् 1575 से लेकर संवत् 1661 के बीच "गुरु ग्रन्थ साहब" के सम्पादित होने तक अर्थात् 86 वर्षों के अन्तराल में न जाने कितनी ही विकृतियां पाठों के अन्तर्गत आयी होंगी उस पर उनकी दृष्टि नहीं गयी, जो प्रामाणिकता की दृष्टि से आवश्यक था । फिर भी डॉ० वर्मा ने "संत कबीर" के सम्पादन के समय आधार ग्रन्थ की भाषा पर विचार किया था । इस प्रकार "संत कबीर" में 243 "सलोक" {साखियां} और 228 पद संकलित हैं । उनके इस ग्रन्थ

में रमैनियों को बिल्कुल नकार दिया गया है । यह उचित नहीं कहा जा सकता ; क्योंकि रमैनियों का कबीर- साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है । जो कुछ भी हो, "संत कबीर" कबीर की वाणियों का प्रामाणिक पाठ सुलभ कराने की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास है ।

4• कबीर-ग्रंथावली (डॉ० पारसनाथ तिवारी) -

इधर जितने भी कबीर से सम्बन्धित प्रामाणिक पाठों को संकलित करने की दिशा में कार्य हुए हैं, उनमें सबसे अधिक वैज्ञानिक स्वरूप का निर्धारण डॉ० पारसनाथ तिवारी ने किया है । वास्तव में इनका कार्य बड़ा ही श्रमसाध्य रहा है । इन्होंने कबीर के प्रामाणिक पाठों का संग्रह करके हिन्दी-जगत को अपनी अमूल्य निधि भेंट की । डॉ० तिवारी ने कबीर की वाणियों के प्रामाणिक संग्रह के लिए दो प्रकार की सामग्री का उपयोग किया है -

1- हस्तलिखित
2- मुद्रित

तिवारी जी को इन हस्तलिखित एवं मुद्रित सामग्री को प्राप्त करने में अत्यधिक श्रम करना पड़ा । इसके उपरान्त उन्हें विपुल साहित्य देखने को मिला, कुल मिलाकर 1600 पद, 4500 साखियाँ और 134 रमैनियाँ इन्हें प्राप्त हुई थीं । इसके अतिरिक्त 100 रचनाएँ और मिली थीं । इस अपार भण्डार से प्रामाणिक रचनाओं की छानबीन एवं अलगाव का कार्य अपने आप में जटिल है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । इस कठिनाई का अनुभव करते हुए स्वयं तिवारी जी ने कहा है -

"मैं नहीं जानता कि संसार के और किसी कवि या लेखक की रचनाओं की समस्त प्रतियों में समान रूप से प्राप्त और पुनः उनमें पृथक्-पृथक् सामूहिक अथवा स्वतंत्र रूप से प्राप्त छन्दों की संख्या में इस कोटि की विषमता होगी, जितनी कबीर के सम्बन्ध में दिखाई पड़ती है।" ।*

इस विपुल सामग्री से डॉ० पारसनाथ तिवारी ने अत्यन्त पैनी दृष्टि रखते हुए एवं अत्यन्त सावधानापूर्वक सामग्री का परीक्षण करते हुए निष्कर्ष रूप में अपनी ग्रन्थावली में 200 पदों, 744 साखियों एवं 20 रमैनियों; एक चौंतीसी रमैनी को स्थान दिया। वैज्ञानिक पाठ-निर्धारण के लिए उन्होंने विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है - लिपिभ्रम की दृष्टि से, पुनरुक्ति-दोष की दृष्टि से, शब्दों के क्लिष्टतर रूप की दृष्टि से, व्याकरण की दृष्टि से, प्रयोग-वैषम्य की दृष्टि से, प्रतिपादित सिद्धान्त अथवा कवि-समय की दृष्टि से, सांप्रदायिक संशोधनों की दृष्टि से, तुक की दृष्टि से, और प्रतियों की पाठ-स्थिति की दृष्टि से। इस प्रकार तिवारीजी ने वैज्ञानिक पाठ का निर्धारण किया है। यद्यपि उनके द्वारा निर्धारित ग्रन्थावली में छन्दों की संख्या को अन्तिम नहीं कहा जा सकता। किन्तु तिवारीजी का यह कार्य निस्सन्देह कबीर की वाणियों के प्रामाणिक अध्ययन में विशिष्ट योगदान प्रदान करता है।

5. कबीर-ग्रन्थावली (डॉ० माताप्रसाद गुप्त) -

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने "कबीर-ग्रंथावली" के सम्पादन का आधार आगरा विश्वविद्यालय के के०एम० मुंशी विद्यापीठ में सुरक्षित संवत् 1762 की एक प्रति को बनाया तथा अधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक पाठ देने का प्रयत्न किया; परन्तु इस ग्रन्थावली में मुख्यतः डॉ० श्यामसुन्दर दास कृत "कबीर ग्रंथावली" के ही सभी छन्द थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ

1-* क०ग्रं०, प्रस्तावना, पृ० 3

स्वीकार कर लिये गये हैं तथा संवत 1762 वाली प्रति की एक साखी और 19 पद और जोड़ दिये गये हैं। प्रत्येक साखी के आरम्भ में "कबीर" शब्द जुड़ा हुआ है। डॉ0 गुप्त के इस कार्य में जो नवीनता दिखलायी पड़ती है वह है डॉ0 श्यामसुन्दर दास कृत "कबीर-ग्रंथावली" के पाठों का पुन: संशोधन एवं डॉ0 पारसनाथ तिवारी के कार्यों की आंशिक पुनर्विचार की प्रेरणा। डॉ0 माताप्रसाद गुप्त ने अपनी ग्रन्थावली में लिखा है -"कबीर-वाणी के दो सर्वाधिक प्राचीन और सुरक्षित पाठों का यथेष्ट रूप से न तो मूल्यांकन ही हुआ था और न कबीर-वाणी का सन्देश स्पष्ट करने में उपयोग हुआ था।" 1*

शायद इसीलिए डॉ0 माताप्रसाद गुप्त डॉ0 पारसनाथ तिवारी के पाठालोचन से पूर्ण संतुष्ट नहीं हुए और पुन: "कबीर-ग्रंथावली" के सम्पादन की आवश्यकता समझी और इस कार्य को स्वयं ही कर डाला।

उपर्युक्त नवीनताओं के सन्दर्भ में इस संस्करण के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता।

6. कबीर बीजक (डॉ0 शुकदेव सिंह) -

कबीर पंथियों में बीजक का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है तथा कबीर की वाणियों का अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता रहा है। विभिन्न विद्वानों ने भी बीजक के महत्व को स्वीकार किया है। बिशप जी0 एच0 वेस्टकॉट ने बीजक के सम्बन्ध में लिखा है -

---

1-* सं0 डॉ0 माताप्रसाद गुप्त-कबीर-ग्रंथावली, प्रस्तावना, पृ0 ।

"बीजक कबीरसाहब की शिक्षा का प्रामाणिक ग्रन्थ मान लिया गया है । यह सम्भवत: 1570 ई0 में या सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुन देव द्वारा नानक की शिक्षा आदि ग्रन्थ में लिखे जाने के बीस वर्ष बाद लिखा गया था ।" 1*

डॉ0 बड़थ्वाल बीजक की रचनाओं का संग्रहकाल संवत् 1660: सन् 1603 ई0 से पहले नहीं मानते ।

कबीर-बीजक पर दो दिशाओं में कार्य हुए हैं - प्रथम कबीर पंथी साधुओं द्वारा एवं द्वितीय अन्य लोगों द्वारा । कबीरपंथी साधुओं में हंसदास शास्त्री का "कबीर-बीजक" सदाफलदेव जी का "बीजक-भाष्य" श्री गोसाईं श्री भगवान साहब का "मूल बीजक" एवं विचारदास का "बीजक" आदि उल्लेखनीय हैं तथा अन्य लोगों में जिन्होंने कबीर-बीजक पर कार्य किये हैं, उनमें रीवा नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह कृत "पाखण्ड-खण्डिनी टीका" मुख्य है । डॉ0 पारस नाथ तिवारी ने भी अपनी ग्रंथावली में कबीर-बीजक के 32 संस्करणों की सूची दी है ।

डॉ0 शुकदेव सिंह ने "भगताही बीजक" को ही अधिक विश्वसनीय रूप में स्वीकार करते हुए उसे अपने संपादन का आधार बनाया । वैसे तो उन्होंने बीजक के विभिन्न मुद्रित संस्करणों एवं विभिन्न मठों में संगृहीत सामग्री का उपयोग किया है । इस प्रकार डॉ0 सिंह ने अपने बीजक संस्करण में 84 रमैनियाँ, 115 सबद, 1चौंतीसी 1 विप्रमतीसी, 1 कहरा, 12 बसंत, 2 चाँचर, 2 बेलि, 1 बिरहुली,

---

1-* बिशप जी0एच0 वेस्टकाट-कबीर एण्ड कबीर पंथ, पृ0 7

3 हिंडोला और 353 साखियों को प्रामाणिक मानकर स्वीकार किया है । डॉ0 सिंह भाषा की दृष्टि से टिप्पणी करते हुए यह मानते हैं कि कबीर की भाषा पूर्वी रही होगी ; परन्तु इस तथ्य की आज तक अनदेखी होती रही है । वे डॉ0 पारसनाथ तिवारी द्वारा सम्पादित ग्रन्थावली की भाषा को राजस्थानी परम्परा में मानते हैं । डॉ0सिंह का कार्य वैज्ञानिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है ।

7· रमैनी (सं0 डॉ0 जयदेव सिंह, वासुदेव सिंह) -

इस संस्करण में लेखक द्वय ने भावार्थ बोधिनी व्याख्या एवं टीका लिखकर निश्चित ही इसके महत्त्व को बढ़ा दिया है । इस संस्करण का महत्त्व पाठालोचन की अपेक्षा व्याख्या की दृष्टि से अधिक जान पड़ता है ।

आज तक कबीर की प्रामाणिक रचनाओं को उपलब्ध कराने की दिशा में जो भी कार्य हुए हैं, उनके विवेचन के उपरान्त यह विदित होता है कि कबीर की वाणियों का प्रामाणिक अध्ययन "कबीर -ग्रंथावली" (संपादक डॉ0 पारसनाथ तिवारी) में किया जा सकता है; वैसे इस ग्रन्थावली में दी गयी छन्दों की संख्या को अन्तिम नहीं माना जा सकतातथाआगे और भी इसमें अनुसंधान की आवश्यकता है । ग्रन्थावली की प्रामाणिकता को ध्यान में रखते हुए ही आलोच्य विषय का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करने हेतु इसे आधार ग्रन्थ बनाया गया है ।

* * *

*

ख - कबीर की काव्यभाषा

* * *

काव्य-भाषा

काव्य-भाषा का अर्थ है सर्जनात्मक साहित्य की भाषा ; किन्तु इसका प्रयोग इस अर्थ तक ही सीमित नहीं है । सामान्य भाषा का अर्थ है -दैनिक जीवन या बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली भाषा । यह भी काव्यभाषा की ही तरह अपने अर्थ तक सीमित नहीं है । कभी-कभी काव्य में सामान्य भाषा के प्रयोग मिलते हैं तथा इसके विपरीत दैनिक जीवन में काव्यभाषा के प्रयोग मिलते हैं । अर्थात् किसी का भी कहीं प्रयोग किया जा सकता है । इन दोनों में प्रकृतिगत अन्तर न होकर मात्र गुणात्मक होता है ।

काव्यभाषा मूलत: सामान्य भाषा पर आधृत होती है । कवि या लेखक सामान्य भाषा का कच्चा माल लेकर अपनी सर्जनात्मक, समृद्ध कल्पना द्वारा उसे नयी अर्थवत्ता, नया तेवर, नयी भंगिमा प्रदान कर अपनी रचना में प्रयुक्त करता है - वैसे ही जैसे मूर्तिकार काष्ठ या पाषाण को अपनी तराशने की कुशल प्रक्रिया द्वारा एक नया सर्जनात्मक सौन्दर्य प्रदान करता है । जबकि उपादान सामग्री वही होती है, जो अन्यत्र अन्य स्थिति में प्रयुक्त की जाती है ;किन्तु कलाकार उसे अपनी कलात्मकता से कुछ का कुछ बना देता है ।

काव्य में प्रयुक्त भाषा की ठीक वही स्थिति नहीं होती जो मूर्तिकला में प्रयुक्त काष्ठ व पाषाण की होती है । काष्ठ व पाषाण अपने मूल रूप में स्थिर एवं निष्क्रिय होते हैं ; किन्तु भाषा सक्रिय व गत्यात्मक होती है, उसमें बराबर विकास होता रहता है । शब्दों के अर्थों में कालानुसार परिवर्तन होता रहता है, किन्तु काष्ठ व पाषाण हर काल में समान रहते हैं । साहित्यकार शब्दों का प्रयोग युग-परिप्रेक्ष्य में उनकी सार्थकता की जांच करने के उपरान्त हो करता है ।

सामान्य भाषा केवल सामान्य अनुभवों को वहन करती है तथा भाषा के सामान्य उपादानों का प्रयोग करती है ; किन्तु काव्यभाषा विशिष्ट होती है और भाषा के विशिष्ट उपादानों का प्रयोग करती है । जब कवि या लेखक को उसके अनुभव की विशिष्टता की पीर काव्य-रचना के लिए प्रेरित करती है, तो वह भाषा के सामान्य स्तर से विद्रोह करके विशिष्ट भाषा का प्रयोग करता है । उसके विशिष्ट अनुभव को वहन करने में केवल विशिष्ट भाषा ही समर्थ होती है । यदि इस स्तर पर भाषा विशिष्ट न हो तो उसमें और विशिष्ट अनुभूति में कदापि सामंजस्य नहीं हो सकता और वह अभिव्यक्त को न्याय नहीं दे पायेगी । इस स्तर पर काव्यभाषा भाषा के सामान्य नियम-बंधनों से परे जाकर नव्य मार्ग का अनुसरण करती है । व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करती हुई दूर चली जाती है ; किन्तु यह उल्लंघन एक सीमा तक ही स्वीकार्य है, तदुपरान्त वह काव्यभाषा का दोष माना जाता है । काव्यभाषा कल्पना के द्वारा अभिव्यक्ति के स्तर पर चयन, विचलन, समानांतरता और अप्रस्तुत-विधान जैसे भाषा के नये उपादानों का प्रयोग करती है ।

अर्थ-स्तर पर काव्य-भाषा का अपना स्वरूप होता है ;क्योंकि हम कुछ पंक्तियों को सुनकर सहसा कह देते हैं कि ये पंक्तियाँ तो कबीरदास की लगती हैं, ये सूरदास की तथा ये तुलसीदास की । सामान्य भाषा तो केवल कोशार्थ की ही सूचना देती है, जबकि काव्यभाषा कवि की अनुभूति को पाठक या श्रोता तक पहुँचाती है ।

भाषा के कुछ उपादानों का प्रयोग सामान्य भाषा एवं - काव्यभाषा दोनों में मिलता है, किन्तु दोनों में अन्तर जीवंतता, प्राणवत्ता, सर्जनात्मकता और प्रभविष्णुता का होता है । सामान्य भाषा में पाये जाने

वाले अप्रस्तुत-विधान, सादृश्य-विधान, प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता की कोरें घिस चुकी होती हैं, बहु प्रयोग के कारण वे प्रभावहीन, रूढ़ हो गयी होती हैं तथा अपनी जीवंतता खो चुकी होती हैं। इनमें वह आकर्षण व ताजगी नहीं रह जाती है। इसके विपरीत काव्यभाषा में यह ताजगी, प्रभविष्णुता, जीवंतता, सर्जनात्मकता बनी रहती है। उदाहरणार्थ -एक प्रतीक को लें। अगर कहा जाय कि "मोहन गधा है" तो उससे सीधा अर्थ निकलेगा कि मोहन मूर्ख है। जबकि "गधा" यहाँ प्रतीक के रूप में आया हुआ है; किन्तु बहु प्रयोग के कारण रूढ़- सा बन गया है तथा उसके साथ जुड़ी हुई पूर्व की सारी बातें विस्मृत-सी हो गयी हैं और अब वह सीधे मूर्ख का पर्याय बन गया है। अर्थात् यह प्रतीक अपनी अर्थवत्ता खोकर प्रभावहीन हो गया है।

सामान्य भाषा अर्थ स्तर पर केवल कोशार्थ देकर अपनी इतिश्री समझ लेती है; किन्तु काव्यभाषा आन्तरिक स्तर पर कार्य करती है तथा लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ द्वारा अर्थ के अनेक स्तर हमारे सामने प्रस्तुत करती है। अर्थवैशिष्ट्य इसका प्रमुख गुण है। कभी-कभी अर्थ की अनेकानेक परतें इसमें अनुस्यूत होती हैं; उदाहरणार्थ -माँस का सामान्य भाषा में अर्थ है-गोश्त, किन्तु काव्यभाषा में इसका अर्थ है - उद्दाम वासना, इन्द्रिय-सुख एवं शारीरिक भोग इत्यादि।

सामान्य भाषा और काव्यभाषा मूलतः एक हैं। साहित्यकार सादृश्य, चयन या विचलन के आधार पर नयी भाषा का संधान करता है। बहु प्रयोग के कारण जब काव्यभाषा फीकी व प्रभावहीन हो जाती है, तब पुनः साहित्यकार को काव्यभाषा का संधान करना पड़ता है। इस प्रकार सामान्य भाषा विशिष्ट बनती है, विशिष्ट सामान्य, परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं। सामान्य भाषा एवं काव्यभाषा की तुलना हम जल एवं जल-तरंग से कर सकते हैं। सामान्य

भाषा जल है और काव्यभाषा जल-तरंग । जिस प्रकार जल-तरंग उठकर पुनः जल में समाहित हो जाती है तथा पुनः जल-तरंग के रूप में ऊपर उठती है, यही क्रम चलता रहता है । ठीक यही स्थिति सामान्य भाषा व काव्यभाषा की भी है । इसे चित्र रूप में निम्नवत् प्रस्तुत कर सकते हैं ।--

काव्यभाषा----→काव्यभाषा----→काव्यभाषा---→काव्यभाषा
सामान्यभाषा----→सामान्यभाषा--→सामान्यभाषा----→ सामान्यभाषा

इस तरह काव्यभाषा सामान्य भाषा को रस-सिक्त करती रहती है तथा सामान्य भाषा भी काव्यभाषा को समृद्धि देती रहती है; किन्तु यह बहुत कुछ प्रयोक्ता की सर्जनात्मक कल्पना पर निर्भर करता है। कबीर ने अपने काव्य की स्वर्णभाषा में अनेक अनगढ़ तथा तथाकथित विकृत जनभाषा के शब्दों को ऐसे जड़ दिया है कि देखते ही बनता है ।

कबीर की काव्यभाषा का स्वरूप

कबीर की काव्यभाषा के विवेचन के पूर्व यह देख लेना उपयुक्त होगा कि स्वयं कबीर की काव्यभाषा के विषय में क्या धारणा थी । आज से लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व कबीर ने काव्य एवं काव्यभाषा के विषय में जो कुछ कहा वह लोगों को आश्चर्य में डाल देने वाला है । उनके काल तक किसी ने भी इस प्रकार का विचार व्यक्त नहीं किया था । शायद वे प्रथम आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्यकार हैं, जिन्होंने काव्य एवं काव्यभाषा के विषय में अपना विचार व्यक्त किया है । उनकी काव्य-भाषा सम्बन्धी परिभाषा संस्कृत विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं से घटकर नहीं है । अभी हाल तक लोगों को काव्यभाषा के बारे में भ्रम था कि काव्यभाषा सामान्य भाषा से अलग होती है ; किन्तु कबीर

ने बहुत पहले ही दोनों के मूलभूत एकत्व को स्वीकार किया था । उनका इस सम्बन्ध में छन्द द्रष्टव्य है -

सोई आखर सोइ बैंन, जन जू जू बाचवंत ।
कोई एक मेलै लवनि, अमीं रसाइंन हंत ।।

उद्धृत छन्द में कबीरदास कहते हैं कि वही अक्षर (शब्द) और वही वचन (वाक्य) होते हैं ; परन्तु विभिन्न लोग उन्हें भिन्न-भिन्न ढंग से बोलते हैं । कोई उसी भाषा में लावण्य मिला देता है तो वही अमृत रसायन बन जाती है ।

उपर्युक्त छन्द से स्पष्ट होता है कि सामान्य भाषा लावण्य-युक्त हो जाने पर अमृतमय काव्य बन जाती है ।

काव्य सम्बन्धी दो प्रसिद्ध परिभाषाएँ- 1-रमणीयार्थ प्रतिपादक : शब्द: काव्यम् (पंडितराज जगन्नाथ) और 2- वाक्यं रसात्मकं काव्यम् (आचार्य विश्वनाथ) कबीर द्वारा दी गयी परिभाषा में समाहित हो गयी हैं । कबीर की इस काव्य सम्बन्धी परिभाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह काव्य की भाषोन्मुख पहली परिभाषा है । कबीर भाषाके प्रति बड़े जागरूक थे । उनकी उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि सामान्य भाषा और काव्यभाषा मूलत: एक हैं । सामान्य भाषा ही लावण्ययुक्त होकर काव्यभाषा बन जाती है ।

कबीरदास काव्य में व्यर्थ की पच्चीकारी व कृत्रिमता आदि के विरुद्ध हैं । उनके अनुसार काव्यभाषा वही अच्छी होती है, जिसमें कथ्य के अनुरूप सहज सौन्दर्य हो । कबीर की भाषा में जो पैनापन मौजूद है, वह श्रोता को तिलमिला देने वाला है । उस शक्ति के पीछे कवि की अपनी ईमानदारी ही है ।

1——* क०ग्रं०, सा० 28-7

है और उसका हृदय तर्क-वितर्क से आन्दोलित होने लगता है । वह एक बार परम्परा पोषित कुरीतियों एवं आडम्बरों पर पुनर्विचार के लिए विवश हो जाता है ।

कबीर की भाषा में आत्मीयता, सोधापन और सरलता दिखायी देती है; किन्तु उनकी यह सरलता सर्वत्र एक सी नहीं है । कथ्य के अनुरूप भाषा में परिवर्तन हुआ है । किसी अच्छे कवि के लिए यह आवश्यक भी है, अन्यथा वह कथ्य को ठीक तरह से सम्प्रेषित नहीं कर सकता ।

कबीर भक्तिकाल के पहले ऐसे कवि हैं, जिनमें अपभ्रंश-काव्य की प्रायोगिक सूक्ष्मताएं एवं मान्यताएं थोड़े परिवर्तन के साथ सुरक्षित हैं । इस कारण उन्हें भाषिक संक्रान्ति का कवि मानने में कठिनाई नहीं है। अपभ्रंश की तरह संज्ञा पदों, क्रिया पदों, विभक्तियों एवं परसर्गों का व्यवहार कबीर में जितना अधिक है, उतना उस युग के दूसरे कवियों में नहीं । व्यंजन द्वित्व द्वारा संज्ञा पदों का निर्माण तथा उसमें अपभ्रंश के अनुरूप विभक्ति प्रक्रिया कबीर की अपनी विशेषता है ।

यहु तनु जारौं मसि करौं, ज्यूं धूवां जाइ सरग्गि ।
मति वै रांम दया करैं, बरसि बुझावे अग्गि ।। 1*

दुलहिनीं गावहु मंगलचार ।
हम घरि आए राजा रांम भरतार ।।2*

1-* क०ग्रं०, सा० 2-20

2-* क०ग्रं०, प० 5

इन प्रयोगों से ऐसा लगता है जैसे वीरगाथा -काल की सुरक्षित व्याकरणिक कोटियाँ कबीर में अपना स्वरूप खण्डतः ही सही लेकिन प्रकट अवश्य करती हैं । कबीर की पर्यटनशील मनोवृत्ति एवं उनकी अदभुत ग्राहिका शक्ति के कारण पंजाबी, राजस्थानी प्रयोगों की छिटपुट सौन्दर्य-योजना कविता को और भी अर्थवत्ता देने में पूर्णतया सक्षम है । इन सन्दर्भों में वे सामान्य दृष्टि का परिचय नहीं देते ; चयन की उस विशिष्ट प्रक्रिया का बोध कराते हैं, जो उनकी ऊँची कवि-प्रतिभा का प्रमाण है ।

बिरहिन ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझे धाइ ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलिहिगे आइ ।। 1*

साखी में "ऊभी", "सिरि" और "बूझे धाई" के प्रयोग तीन तरह की भावदृष्टियों के आयोजन में गतिमय हैं । "ऊभी" राजस्थानी भाषा का शब्द है, जो खड़े रहने का अर्थ देता है, लेकिन "ऊभी" में व्यथा में डूबकर खड़े रहने की व्यंजकता है और कबीर प्रियतम का रास्ता देखती हुई उदासीन प्रतीक्षारत नायिका का चित्र खींचने के लिए खड़ी के स्थान पर "ऊभी" शब्द का चयन करते हैं । ऐसे प्रयोग उस भाषिक सौष्ठव के प्रमाण हैं, जो श्रेष्ठ कवि द्वारा ही संभव होते हैं । संज्ञा पदों को पूर्वी व्युत्पादक प्रत्ययों के साथ जोड़कर उन्हें मधुर बनाते हुए कबीर ने इस चयन को कहीं और भी अर्थवत्ता दी है ।

अंखियाँ प्रेम कसाइयां, जग जानैं दुखड़ियांह ।
राम सनेही कारनैं, रोइ रोइ रातड़ियांह ।।2*

1-* क०ग्रं०, सा० 2-3।

2-* क०ग्रं०, सा० 2-23

कबीर की काव्यभाषा में इस तरह के रचनात्मक प्रयोग किसी भाषा के प्रभाव नहीं, उनकी सचेष्ट रचनात्मकता के सहज सुलभ अंग हैं, जो उनकी शैली को वैशिष्ट्य देते हैं ।

कबीर के सम्पूर्ण प्राप्त छन्दों को सुविधा की दृष्टि से कई उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है । इस विभाजन का आधार वस्तु सामग्री है - 1-कबीर वाङ्मय में पहला वर्ग उन छन्दों का है, जिनमें आत्मज्ञान की विभोरता, ब्रह्म-दर्शन की तन्मयता तथा भक्ति एवं रागानुभूति की सरस समर्पण-दृष्टि प्रकट है । ये सारे छन्द कबीर के उत्कृष्ट कवि-रूप का बोध कराते हैं । 2-इस दूसरे वर्ग में कबीर के उन छन्दों को रखा जा सकता है, जिनमें परम्परागत प्रभाव, योग की जटिलता अथवा सांकेतिकता के कारण रहस्य-दृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है, इनकी शैली उलटबांसियों की है । 3-इस वर्ग में कबीर के वे छन्द हैं, जिनमें रूढ़ियों; परम्पराओं अथवा धार्मिक आडम्बरों पर सीधा आक्षेप है । यह आक्रोश अभिव्यक्ति का सहज भाग बना है । 4-चौथी श्रेणी उन छन्दों की है, जिसमें माया से मुक्ति, सांसारिकता से छुटकारा, जीवन की अनित्यता और ईश्वर-प्राप्ति का उपदेश दिया गया है । यह विचारणीय है कि इन चारों ही प्रकरणों की भाषा में भाषिक अन्तराल स्पष्ट है ।

कबीर के आत्मानुभव से सम्बन्धित छन्दों की स्थितियाँ भी अलग-अलग हैं । वे रामनाम और उसके स्वरूप के अनन्य साधक हैं । इस स्वरूप को पाने के बाद अथवा पाने की प्रक्रिया में उनकी अनुभूति का स्तर अलग-अलग है और इसकी अभिव्यक्ति वे रहस्यवाद की भिन्न-भिन्न स्थितियों में वे नितान्त भिन्न शब्दावली में करते हैं । एक तरफ सम्बन्ध बनाने की कोमल आकांक्षाओं का ललित रचनात्मक आग्रह है, जहाँ "प्रिया"

के बिम्बों की मानसिक अभिव्यक्तियाँ मुखरित होती हैं, दूसरी ओर साधना की कठोरता के परुष बिम्ब हैं । इनमें रूपक, रूपकातिशयोक्तियों, अन्योक्तियों को अपनी काव्यभाषा का हिस्सा बनाकर कबीर कई भाषिक अन्तरालों से जोड़ देते हैं । रूपकों में सूत कातने की विविध स्थितियाँ चित्रित हैं । इन दोनों ही प्रकरणों में एक ओर आत्मानुभव की विह्वलता है, दूसरी ओर साक्षात्कार की तन्मयता । जहाँ पहले सन्दर्भ में कबीर की भाषा विमुग्ध, कोमल वर्णों की संवृत्ति के साथ लयात्मक एवं मधुर है, वहीं दूसरे प्रकरण में इतनी सूक्ष्म सांकेतिक हो जाती है, जहाँ कबीर प्रतीकों के अतिरिक्त कुछ जोड़ने में असमर्थ हो उठते हैं । अपनी भावुक अभिव्यक्तियों में विरहिणी की विविध स्थितियों की व्यंजना, उसके माध्यम से शब्द-चित्रों का निर्माण, रूप-चित्रों की उपस्थिति, गत्यात्मक चित्रावलियों की समूहबद्ध स्थिति तथा लयात्मकता भाषा का सहज भाग है । अपनी कल्पनाशीलता द्वारा इस चित्रमयता को अनुभूति की लयात्मकता के साथ जोड़कर कबीर अलग-अलग बिम्बों का कोमल आरोप करते हैं । "प्रेम बिरह कौ अंग", "पतिब्रता कौ अंग" में संगृहीत साखियों में चित्रमय भाषा की यह व्यापार-योजना कबीर की शैली का वैशिष्ट्य है । अभिव्यक्ति में पथिक की कल्पना, विरहिणी की आतुरता, विवशता, संदेश की स्थिति और आतुर समर्पण की विह्वल लालसाओं का यह सम्पूर्ण चित्रमय व्यापार कबीर की काव्यभाषा को एक श्रेष्ठ रचनात्मक सौन्दर्य देता है । आत्मानुभव का दूसरा पक्ष साधना का है, जहाँ भाषा प्रतीकात्मक एवं सांकेतिक है । इन्हीं भूमिकाओं में कबीर ने सिद्धों की परम्परा से चले आने वाले उन संकेतों को दुहराया है, जो ज्ञानोपलब्धि की सीमा का परिचय देते हैं । "मछली", "नदी" जैसे संकेत इसी संकेत-ग्रहण का हिस्सा है ।

हरि रंग लागा हरि रंग लागा ।
मेरे मन का ससै भागा ।।
जब हम रहली हठिल दिवानी तब पिय मुखा न बोला ।
जब दासी भई खाक बराबरि साहिब अंतर खोला ।। [1*]

हौं वारी मुख फेरि पियारे ।
करवट दे मोहिं काहे कौं मारे ।।
करवत भला न करवट तोरी ।लागु गले सुनु बिनती मोरी ।।
हम तुम बीच भयौ नहिं कोई ।तुमहिं सो कंत नारि हम सोई ।। [2*]

कबीर रेख सिंदूर की, काजर दिया न जाइ ।
नैननि प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाइ ।। [3*]

नैनां अंतरि आव तूं, ज्यों हौं नैन झपेउं ।
नां हौं देखौं और कौं, नां तुझ देखन देउं ।। [4*]

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं ।
गले राम की जेवरी, जित खैंचे तित जाउं ।।[5*]

अंक भरे भरि भेटिया, मन नहिं बांधे धीर ।
कहे कबीर वह क्यों मिले, जब लग दोइ सरीर ।। [6*]

1-* कoग्रंo, पo 16
2-* कoग्रंo, पo 19
3-* कoग्रंo, साo 11-13
4-* कoग्रंo, साo 11-12
5-* कoग्रंo, साo 6-1
6-* कoग्रंo, साo 9-26

बहुत दिनन में प्रीतम आए ।
भाग बड़े घरि बैठें पाए ।।
मंगलचार मांहि मन राखौं । राम रसांइन रसनां चाखौं ।।
मंदिर मांहि भया उजियारा । ले सूती अपना पिय प्यारा ।।
मैं निरास जो नौ निधि पाई । हमहिं कहा यह तुमहिं बड़ाई ।।
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हा । सहज सुहाग रांम मोहिं दीन्हा ।। [1*]

बिरहिन ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझे धाइ ।
एक सबद कहि पीव का, कबर रे मिलिहिंगे आइ ।। [2*]

प्रीति रीति तौ तुझ सौं, मेरे बहु गुनियाले कंत ।
जौ हंसि बोलूं और सौं, तौ नील रंगाऊं दंत ।। [3*]

कबीर देखत दिन गया, निसि भी निरखत जाइ ।
बिरहिनि पिउ पावै नहीं, जियरा तलफत जाइ ।।[4*]

दुलहिनीं गावहु मंगलचार ।
हंम घरि आए राजा रांम भरतार ।।
तन रत करि मैं मन रति करिहौं पांचउ तत्त बराती ।
रांम देव मोरे पाहुनैं आए मैं जोबन मैंमाती ।।
सरीर सरोबर बेदी करिहौं ब्रह्मा बेद उचारा ।
रांम देव संगि भांवरि लेहौं धनि धनि भाग हमारा ।।[5*]

1-* क०ग्रं०, प० 6
2-* क०ग्रं०, सा० 2-31
3-* क०ग्रं०, सा० 11-7
4-* क०ग्रं०, सा० 2-39
5-* क०ग्रं०, प० 5

कबीर के उपर्युक्त सभी छन्दों की भाषा का यौवन अपने निखार पर है, जो उन्हें महाकवि के गौरव से सुशोभित करता है। सभी छन्दों में भाषा की तरलता की धार भी आ पड़ी है।

कबीर के दूसरे वर्ग के छन्दों में परम्परागत प्रभाव, योग की जटिलता अथवा सांकेतिकता के कारण रहस्य-दृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है और इसकी शैली उलटबांसी है। इन छन्दों की भाषा प्रतीकात्मक है।

मैं सासुरे पिय गौंहनि आई।
सांई संगि साध नहिं पूजी गयौ जोबन सुपिनैं की नाईं ।। 1*

उद्धृत छन्द में कबीर विवाह के प्रतीक द्वारा यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि जीव का असली स्वामी शुद्ध चैतन्य है; किन्तु अविद्या के कारण वह सांसारिकता में लिप्त हो जाता है। शुद्ध चैतन्य का संसर्ग होने पर जीव इस भवसागर से पार उतर जाता है।

पांनीं मांहो परजली, भई अपरबल आगि।
बहती सलिता रहि गई, मच्छ रहे जल त्यागि ।। 2*

उलटबाँसियाँ अटपटी होने के कारण जनता को चौंका देती हैं तथा उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं; किन्तु साधारण जनता जब उनके भीतरी अर्थ को समझ लेती है, तो वह साधुओं की बातों से बहुत प्रभावित होती है। सभी उलटबाँसियाँ प्रतीकमूलक हैं।

1-* क०ग्रं०, पं० 109
2-* क०ग्रं०, सा० 2-5।

प्रस्तुत छन्द में अभिधार्थ अटपटा सा लगता है तथा असंभव बातों का संयोग दिखायी देता है -"पानी में आग लगना" तथा "मछलियों का जल त्याग कर जाना" असंभव कार्य ही है; किन्तु प्रतीकात्मक अर्थ लेने पर छन्द का अर्थ सीधा हो जाता है ।

उपर्युक्त छन्द में "पानी" विषय-वासना का प्रतीक, "आगि" ज्ञान का प्रतीक, "सलिता" माया का प्रतीक एवं "मच्छ" जीव के प्रतीक हैं । विषय-वासना रूपी जल में ज्ञान की अग्नि तीव्र वेग से फैल गयी । इस ज्ञानाग्नि के परिणामस्वरूप माया रूपी सरिता का प्रवाह रुक जाने से सभी जीव रूपी मच्छ विषय-वासना रूपी जल का परित्याग कर गये अर्थात् वे जीवन्मुक्त हो गये ।

जोगिया फिरि गयो गगन मझारी ।
रह्यो समाइ पंच तजि नारी ।।
गयो दिसावरि कौंन बतावै ।जोगिया बहुरि गुफा नहिं आवै ।।
जरि गो कंथा धजा गयो टूटी ।भजि गो डंड खपर गयो फूटी ।।
कहै कबीर जोगी जुगुति कमाई ।गगन गया सो आवै न जाई ।। 1*

प्रस्तुत छन्द में कबीरदास कहते हैं कि साधक संसार से मुक्त हो जाता है । वह नाम-रूप दोनों को छोड़कर इस संसार से चला जाता है और फिर लौटकर नहीं आता ।

1-* क०ग्रं०, प० 51

उपर्युक्त छन्द में "पंचनारि" पंच प्राण के प्रतीक-रूप में, "गुफा" शरीर के प्रतीक-रूप में और "ध्जा" नाम के प्रतीक-रूप में आये हैं।

उद्धृत छन्द में कबीरदास कहते हैं कि साधक जिस चिदाकाश से आया था, वहीं वापस चला गया। वह पंच प्राणों को यहीं छोड़ गया और फिर इस शरीर रूपी गुफा में लौटकर नहीं आयेगा। इस संसार से जीव के जाने के बाद कंथा रूपी उसका शरीर जल जाता है और ध्वजा रूपी नाम भी नष्ट हो जाता है। ऐसा साधक मुक्त पद प्राप्त कर लेता है और उसका आवागमन समाप्त हो जाता है।

तीसरे वर्ग में वे छन्द हैं, जहाँ कबीर का विद्रोही रूप दिखायी पड़ता है। वहाँ वे रूढ़ियों, परम्पराओं अथवा धार्मिक बाह्याडम्बरों पर अपने व्यंग्य बाणों से प्रहार करते हैं। इन छन्दों की भाषा सरल, सपाट एवं अभिधात्मक है; किन्तु व्यंग्य द्वारा भाषा की धार प्रखर हो उठी है -

कहु पंडित सूवा कवन ठाँउ।
जहाँ बैसि हउँ भोजनु खाउँ॥ [1*]

जे तूं तुरक तुरकिनी जाया। तौ भीतरि खतनाँ क्यूं न कराया॥[2*]

माला फेरें क्या भया, जौ भगति न आई हाथि।
दाढ़ी मूंछ मुड़ाइ के, चला दुनीं के साथि॥ [3*]

1-* क०ग्रं०, प० 192, 2-* क०ग्रं०, प० 182, 3-*क०ग्रं०, सा०25-14

पाहन कों क्या पूजिए, जो जनमि न देई ज्वाब ।
अंधा नर आसामुखी, यौंही खोवे आब ।। 1*

उपर्युक्त छन्दों में कबीर ने ब्राह्मण और मुसलमान दोनों पर समान रूप से प्रहार किया है । इन छन्दों में आये प्रश्न का उत्तर भला ब्राह्मण और मुसलमान क्या दे सकता है । इस अनुत्तरीय व्यंग्य से कवि की अभिव्यंजना-शक्ति का पता चलता है । इसी प्रकार आगे बाह्याडम्बर सम्बन्धी छन्दों में भी उन्होंने व्यंग्य भरा है ।

कबीर ने चौथे प्रकार के छन्दों में माया से मुक्ति, सांसारिकता से छुटकारा, जीवन की अनित्यता और ईश्वर-प्राप्ति का उपदेश दिया है । इन छन्दों की भाषा सरल एवं सपाट है ।
उदाहरणार्थ -

बिछिया अजहूं सुरति सुख आसा ।
होन न देई हरि के चरन निवासा ।।
सुख मांगें दुख आगें आवे । तातें सुख माँग्या नहिं भावे ।।
जा सुख तें सिव बिरंचि डरांनां । सो सुख हमहूं सांच करि जांनां ।।
सुख छांड़ा तब सब दुख भागा । गुर के सबदि मेरा मन लागा ।।
कहे कबीर चंचल मति त्यागी । तब केवल रांम नांम ल्यौ लागी ।। 2*

1-* क0ग्रं0, सा0 26-8

2-* क0ग्रं0, प0 159

लाज न मरहु कहहु घर मेरा ।
अंत की बार नहीं कछु तेरा ।।
उपजै निपजै निपजि समाई । नैनन देखत यह जग जाई ।।
बहुत जतन करि काया पाली । मरती बार अगिनि संग जाली ।।
चोआ चंदन मरदन अंगा । सो तनु जलै काठ के संगा ।।
कहै कबीर सुनहु रे गुनियाँ । बिनसैगो रूप देखै सभ दुनियाँ ।। 1*

मानुष जनमहिं पाइ के, चूकै अब की बात ।
जाइ परै भवचक्र मैं, सहै घनेरी लात ।। 2*

साँच बरोबरि तप नहीं, झूठ बरोबरि पाप ।
जाके हिरदै साँच है, ताकै हिरदै आप ।। 3*

जहाँ कोमल भावों को व्यक्त करना अभीष्ट हुआ है, वहाँ कबीर ने कोमल ध्वनियों का प्रयोग किया है । उन्होंने भाव के अनुसार तद्भव, तत्सम, देशज और विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है ।

कबीर की काव्यभाषा में मुहावरा व लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है । उदाहरणार्थ -

हरिजन हरि सौं ऐसें मिलिया जस सोनैं संग सुहागा । 4*

1-* क0ग्रं0, प0 79 2-* क0ग्रं0, सा0 15-6

3-* क0ग्रं0, सा0 15-16 4-* क0ग्रं0, प0 16

मूरख कौं सिखलावते, ग्यांन गांठि का जाइ ।
कोयला होइ न ऊजरा, सौ मन साबुन लाइ ।। [1*]

कबीर की काव्यभाषा अलंकारों की दृष्टि से भी समृद्ध है, जब कि उन्होंने अलंकार-चयन सायास नहीं किया है । ये अपने आप ही उनकी काव्यभाषा में आ गये हैं । इन अलंकारों में रूपक, उपमा, उदाहरण, असंगति, दृष्टान्त, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, - स्वभावोक्ति, वक्रोक्ति, विभावना, विरोधाभास, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, गूढ़ोक्ति, अतिशयोक्ति, काव्यलिंग, श्लेष एवं अनुप्रास, इत्यादि हैं; किन्तु रूपक का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है ।
उदाहरणार्थ -

अवधू मेरा मनु मतिवारा ।
उनमनि चढ़ा गगन रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा ।।
गुड़ करि ग्यांन ध्यांन करि महुआ भौ भाठी मन धारा ।
सुखमनि नारी सहज समांनीं पीवै पीवनहारा ।।
दोइ पर जोरि रसाई भाठी चुआ महा रसु भारी ।
कांमु क्रोध दोइ किए बलीता छूटि गई संसारी ।।
सहज सुन्नि में जिन रस चाखा सतिगुर तैं सुधि पाई ।
दासु कबीर तासु मद माता उछकि न कबहूं जाई ।। [2*]

उद्धृत छन्द में कबीर ने मदिरा बनाने की प्रक्रिया के रूपक द्वारा ब्रह्मानुभूति की अवस्था का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है ।

1-* क0ग्रं0, सा0 22-3 2-* क0ग्रं0, प0 56

कबीर ने अपने काव्य में पाश्चात्य साहित्य के मानवीकरण अलंकार का भी प्रयोग किया है ।

कबीर माया डाकिनीं, सब काहू कौं खाइ ।
दांत उपारूं पापिनीं, जे संता नेड़ी जाइ ।। 1*

प्रस्तुत छन्द में "माया" का मानवीकरण किया गया है । यहाँ "खाइ" क्रिया में कबीर ने नया अर्थ भरा है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर की काव्यभाषा विभिन्न दृष्टियों से बड़ी ही समृद्ध है ।

दसवीं शताब्दी के बाद खड़ी बोली हिन्दी का व्यवहार व्यापक आदर्श भाषा अथवा मानक भाषा के रूप में होता आया है । डॉ० माताबदल जायसवाल, डॉ० भोलानाथ तथा डॉ० महावीरशरण जैन जैसे विश्रुत विद्वानों ने अपने डी०लिट० स्तर की गवेषणाओं में इसी साक्ष्य का समर्थन किया है । दूसरी ओर इतिहास ब्रजभाषा के क्रम में जुड़ता है, जिसमें 14वीं शताब्दी से लेकर आज तक साहित्यिक भाषा का रूप प्राप्त होता है । स्पष्टतः कबीर के व्यक्तित्व का मूल्यांकन इन्हीं दो ऐतिहासिक भाषा सन्दर्भों में ही हो सकता है ।

1-* क०ग्रं०, सा० 31-8

कबीर की भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों में कई-कई तरह के मतवाद प्रचलित थे । कबीर-ग्रंथावली के प्रकाशन के साथ कबीर का जो पाठ सामने आया है, उसके आधार पर कई तरह की विचार-धाराओं को स्वीकार करने का अवसर मिलता है । कारण है इस पाठ का अत्यधिक पश्चिमीपन, इसके विपरीत छोर पर बीजक परम्परा में प्रकाशित पाठ की सीमा आती है, जहाँ पूर्वीपन प्रधान होकर भाषा के सम्बन्ध में प्रश्न चिन्ह लगाता है । इसका तीसरा छोर "गुरु ग्रन्थ-साहब" में संगृहीत कबीर के पाठ से जुड़ता है, जहाँ उसने खड़ी बोली के साथ-साथ पंजाबीपन एवं राजस्थानी प्रयोगों को स्वीकार करते हुए भाषा के सम्बन्ध में टिप्पणियाँ दी गयीं । इस तरह कबीर-ग्रंथावली का पाठ, गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ एवं बीजक का पाठ इन तीनों के भीतर प्राप्त होने वाला भाषा का रूप तथा अभिव्यक्ति-तत्वों का स्तर संघर्ष की उस सीमा का कारण बना है, जिसे स्वीकार करते हुए आलोचकों ने इस कवि के सम्बन्ध में टिप्पणियाँ दीं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "दोहे-साखी की भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी पंजाबी मिली खड़ी बोली है । पर रमैनी और पद में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूर्वी बोली का भी व्यवहार है " ।*

आचार्य शुक्ल के सन्दर्भ में सधुक्कड़ी खड़ी बोली का पर्याय है, जिससे यह सोचा जा सकता कि कबीर के समय तक की खड़ी बोली आम जनों की भाषा रही है, जिसके माध्यम से साधु संत अपना उपदेश देते रहे । इस दिशा में डॉ० श्यामसुन्दर दास कोई निर्णय नहीं दे पाते तथा वे कहते हैं -"कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है ; क्योंकि यह खिचड़ी है । यद्यपि उन्होंने स्वयं कहा है कि मेरी बोली पूर्बी

1-* आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 80

है तथापि खड़ी बोली, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी आदि अनेक भाषाओं का पुट भी उनकी भाषा पर चढ़ा है । पूरबी से उनका तात्पर्य क्या है नहीं कह सकते हैं । उनका बनारस निवास-स्थान पूरबी से अवधी का अर्थ लेने के पक्ष में है परन्तु रचना में बिहारी का पर्याप्त मेल मिलता है ।" ।*

कबीर-ग्रंथावली की भूमिका में दी गयी इस टिप्पणी द्वारा कबीर की भाषा में तीन स्तर डाॅ0 श्यामसुन्दर दास की दृष्टि में स्पष्ट हैं -क-खिचड़ी ख- पूरबी यानी अवधी तथा ग- बिहारी अथवा भोजपुरी । यहाँ यह विचारणीय है कि जिस बनारस की स्थान देशीयता के आधार पर पूर्वी की चर्चा हुई है, वह अवधी भाषी - कभी नहीं रहा है ।

डाॅ0सुनीतिकुमार चटर्जी ने कबीर की भाषा पर विचार करते हुए कबीर की भाषा को ब्रजभाषा कहा है -"कबीर यद्यपि भोजपुरी क्षेत्र के निवासी थे, किन्तु तत्कालीन हिन्दुस्तानी (हिंदी) कवियों की तरह उन्होंने प्राय: ब्रजभाषा का प्रयोग किया और अवधी का भी । उनकी ब्रजभाषा में कभी-कभी पूरबी (भोजपुरी) रूप भी झलक आता है; किन्तु जब वे अपनी बोली भोजपुरी में लिखते हैं तो ब्रजभाषा के तथा अन्य पश्चिमी भाषिक तत्त्व दिखाई पड़ते हैं ।"

डाॅ0 चटर्जी वस्तुत: वेस्टकाट की धारणा के समर्थक हैं, जहाँ इस लेखक ने अपनी पुस्तक "कबीर एण्ड हिज़ कबीरपंथ" में उनकी भाषा को ब्रजभाषा कहा है ।

1-* डाॅ0 श्यामसुन्दर दास-कबीर-ग्रंथावली, भूमिका, पृ0 67

इस दिशा में डॉ0 उदयनारायण तिवारी पूर्वाग्रह पूर्ण वक्तव्य देते हैं । जहाँ वे लिखते हैं -"कबीर की मूल भोजपुरी में लिखी वाणी बुद्ध वचनों की तरह कई भाषाओं में अनूदित हो गयी थी इसलिए उसमें इतने प्रकार की विविधता पाई जाती है ।" 1*

यहाँ डॉ0 तिवारी का समर्थन केवल भोजपुरी के लिए है ।

डॉ0 रामकुमार वर्मा कबीर की भाषा के सम्बन्ध में विचार करते हुए कहते हैं कि संत काव्य तीन भाषाओं से प्रभावित है- पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी एवं पंजाबी । डॉ0 वर्मा के वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि वे न ही कहीं खड़ी बोली का उल्लेख करते हैं, न ही ब्रजभाषा का ।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह संतों की भाषा के विषय में अपने पूर्व इस विषय में विद्वानों द्वारा दी गयी टिप्पणियों की आलोचना करते हुए संतों की भाषा को खिचड़ी, सधुक्कड़ी, पचमेल आदि विशेषण देकर भाषा विषयक अध्ययन की इयत्ता नहीं मानते हैं ; बल्कि कबीर की भाषा का विश्लेषण करते हुए यह कहते हैं कि कबीर बनारस के थे इसलिए उनकी भाषा बनारसी रही होगी । यह तत्कालीन स्वीकृत भाषा पद्धतियों के सही विश्लेषण से उत्पन्न तर्क नहीं कहा जा सकता - "वस्तुस्थिति यह है, कि कबीर ने स्वयं कई भाषाओं का प्रयोग किया संभवतः इतनी बारीकी से वे इन भेदों को स्वीकार नहीं करते थे ।" 2*

1-* डॉ0 उदयनारायण तिवारी- हिन्दी अनुशीलन, अंक 2

2-* डॉ0 शिवप्रसाद सिंह - ब्रजभाषा, पृ0 184

डॉ0 सिंह के मतानुसार कहा जा सकता है कि कबीर ने अलग-अलग प्रकार के भाव-विचारों को अलग-अलग शैलियों में व्यक्त किया और उन शैलियों के लिए भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग किया ।

इस तरह इन विद्वानों द्वारा अपने-अपने अभिमतों में जिन तीन स्वतंत्र भाषाओं का संकेत कबीर के लिए मिलता है, वे हैं- 1-खड़ी बोली 2-ब्रजभाषा 3-राजस्थानी, पंजाबी मिश्रित पूर्वी । किसी भी कवि की भाषा के सम्बन्ध में उसके पाठ को ही प्रमाण माना जा सकता है और जब तक उपर्युक्त सभी समीक्षाएं लिखी जाती हैं, तब तक कबीर का कोई भी वैज्ञानिक पाठ सामने नहीं रहता । इस कारण मूर्धन्य विद्वानों द्वारा परस्पर विरोधी वक्तव्यों का होना स्वाभाविक ही है । डॉ0 पारसनाथ तिवारी द्वारा प्रस्तुत कबीर के प्रामाणिक पाठ के बाद इस सम्बन्ध में दिये जाने वाले निष्कर्ष अपना अलग स्थान रखते हैं । इस सन्दर्भ में तीन शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हुए हैं, जहाँ कबीर की भाषा के सम्बन्ध में प्रयोगावृत्ति पर विचार करते हुए भाषिक निष्कर्ष दिया गया है । 1-अपने शोध प्रबन्ध के भीतर डॉ0 माताबदल जायसवाल कबीर की भाषा को 14वीं शताब्दी में बोली जाने वाली हिन्दी के मानक रूप का प्रमाण मानते हैं ; जो मूलतः खड़ी बोली है । अपने निष्कर्ष के लिए उन्होंने शब्दों, क्रियाओं, कृदन्तों, प्रत्ययों, नाम धातुओं एवं उपसर्गों को आधार बनाते हुए अपना निष्कर्ष दिया है तथा उनका कहना है कि कबीर की भाषा में खड़ी बोली से सम्बन्धित व्याकरणिक कोटियों का व्यवहार 67% से अधिक है । 2-इस दिशा में दूसरा शोध प्रबंध इलाहाबाद विश्वविद्यालय में ही प्रस्तुत हुआ, जहाँ डॉ0 जायसवाल की विवेचना पद्धति को स्वीकार करते हुए डॉ0 भगवतस्वरूप दूबे अपना निष्कर्ष देते हैं और उनका कहना है कि कबीर की भाषा के आधार प्रयोगों में ब्रजभाषा की अधिकता है । इस सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि जिन शब्दों को डॉ0 दूबे ब्रजभाषा का स्वीकार करते हैं, वे उसी रूप में

खड़ी बोली में प्रयुक्त होते हैं । जहाँ तक कृदन्तों एवं क्रियापदों का सम्बन्ध है डॉ0 दूबे के निष्कर्ष खड़ी बोली के पक्ष में ही गये हैं ।
3-इस दिशा में तीसरा शोध प्रबंध आगरा विश्वविद्यालय में प्रस्तुत हुआ, जिसके प्रस्तोता हैं डॉ0 महेन्द्र जैन । इनके निष्कर्ष खड़ी बोली का समर्थन करते हैं । अन्तर केवल इतना है कि इनकी विवेचना-प्रणाली प्रयोगावृत्तियों पर आधारित न होकर संगठन पर आधारित है । डॉ0 जैन का निष्कर्ष जहाँ एक ओर परम्परा का समर्थन कर रहा है, वहीं दूसरी ओर गठनात्मक स्तर पर कबीर की भाषा की विवेचना अपना अलग अर्थ भी रखती है ।

कबीर की भाषा के सम्बन्ध में डॉ0 माताबदल जायसवाल का कथन द्रष्टव्य है, जहाँ वे इस सम्बन्ध में टिप्पणी देते हुए कहते हैं - "कबीर की काव्यभाषा को तत्कालीन हिन्दवी की संज्ञा देना ही अधिक न्यायसंगत, अधिक वैज्ञानिक होगा ।" 1* वे आगे कहते हैं- "कबीर ने सचेत होकर अपनी काव्यभाषा का स्वरूप चुना था । अशिक्षा के कारण ऐसा नहीं हुआ कि जिस प्रदेश में गए भाषा को अपनाया। कबीर ने अपने काव्य के लिए उसी भाषा को चुना जिसे उस युग में तत्कालीन भारत की राष्ट्रभाषा कह सकते हैं ।" 2*

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर की काव्यभाषा का मूलाधार तत्कालीन खड़ी बोली या मध्यकालीन राष्ट्र-भाषा या मध्यकालीन मानक भाषा है ।

1-* डॉ0 जायसवाल- कबीर की भाषा, पृ0 231

2-* डॉ0 जायसवाल-कबीर की भाषा, पृ0 232

--*-- ***** --*--

अध्याय - 3
*

कबीर-काव्य में चयन

चयन

कवि भाषा में उपलब्ध अनेक इकाइयों या व्यवस्थाओं में से किसी एक का चुनाव करता है । शैलीविज्ञान के प्रसंग में यही चयन है । यह चयन स्थिति-भेद, प्रसंग-भेद, अभिव्यक्ति-उद्देश्य से भिन्न-भिन्न हो सकता है । शब्दों का चयन करते समय साहित्यकार को यह ध्यान रखना पड़ता है कि चयन साभिप्राय हो । कबीर की काव्य-भाषा में चयन विभिन्न प्रकार का मिलता है ।

1- ध्वनि चयन -

वस्तुत: काव्यभाषा में ध्वनियों का चयन उनके विशिष्ट प्रभाव व भावों के आधार पर किया जाता है । कोमल भावों के लिए कोमल ध्वनियाँ, वीर रस और परुष भावों के लिए कठोर ध्वनियाँ प्रयुक्त की जाती हैं । ध्वनीय शैलीविज्ञान वाले अध्याय में ध्वनियों पर विस्तृत चर्चा की गयी है, फिर भी हम यहाँ ध्वनियों पर आंशिक विचार करेंगे । कबीर ने अपने काव्य में कोमल भावाभिव्यक्ति के लिए कोमल ध्वनियों का चयन किया है । उदाहरणार्थ -

> सुरग नरक तैं मैं रहा, सतगुर के परसादि ।
> चरन कंवल की मौज मैं, रहौं अंति अरु आदि ।।[1*]

> कबीर हरदी पीयरी, चूनां उज्जल भाइ ।
> राम सनेही यूं मिले, दोन्यूं बरन गंवाइ ।। [2*]

1-* क0ग्रं0, सा0 20-1

2-* क0ग्रं0, सा0 20-3

काया कजरी बन अहै, मन कुंजर मैमंत ।
अंकुस ध्यान रतन है, खेवट बिरला संत ।। [1*]

माया तरवर त्रिबिध का, साखा बिखै संताप ।
सीतलता सुपिनैं नहीं, फल फीका तन ताप ।। [2*]

चरण	7	चरन	(ण का न)
कमल	7	कंवल	(म का व)
हल्दी	7	हरदी	(ल का र)
अंकुश	7	अंकुस	(श का स)
रत्न	7	रतन	(त्र का त)
तरुवर	7	तरवर	(उ का अ)
शाखा	7	साखा	(श का स)
शीतलता	7	सीतलता	(श का स)

आसा[3*] अविनासी[4*] केस[5*] कुसल[6*] खुसी[7*]
गुन[8*] ग्रसत[9*] गुनी[10*] जनम[11*] जम[12*]

1-* क0ग्रं0, सा0 29-3
2-* क0ग्रं0, सा0 31-21
3-* क0ग्रं0, प0 82
4-* क0ग्रं0, प0 102
5-* क0ग्रं0, प0 74
6-* क0ग्रं0, प0 102
7-* क0ग्रं0, प0 87
8-* क0ग्रं0, प0 32
9-* क0ग्रं0, प0 86
10-* क0ग्रं0, प0 199
11-* क0ग्रं0, प0 36
12-* क0ग्रं0, प0 74

निरासा[1*] पगरी[2*] परेसानी[3*] पुरांन[4*] भांति[5*] भसम[6*]

मरन[7*] सरीर[8*] सील[9*] सिंघ[10*] स्याम[11*]

आशा	>	आसा	(श का स)
अविनाशी	>	अविनासी	(श का स)
केश	>	केस	(श का स)
कुशल	>	कुसल	(श का स)
खुशी	>	खुसी	(श का स)
गुण	>	गुन	(ण का न)
ग्रस्त	>	ग्रसत	(स् का स)
गुणी	>	गुनी	(ण का न)
जन्म	>	जनम	(न् का न)
यम	>	जम	(य का ज)
निराशा	>	निरासा	(श का स)
पगड़ी	>	पगरी	(ड़ का र)
परेशानी	>	परेसानी	(श का स)
पुराण	>	पुरांन	(ण का न)

1-* क०ग्रं०, प० 86

2-* क०ग्रं०, प० 44

3-* क०ग्रं०, प० 87

4-* क०ग्रं०, प० 86

5-* क०ग्रं०, प० 200

6-* क०ग्रं०, प० 173

7-* क०ग्रं०, प० 98

8-* क०ग्रं०, सा० 2-27

9-* क०ग्रं०, प० 44

10-* क०ग्रं०, प० 71

11-* क०ग्रं०, प० 87

भक्ति	>	भगति	(क् का ग)
भस्म	>	भसम	(स् का स)
मरण	>	मरन	(ण का न)
शरीर	>	सरीर	(श का स)
शील	>	सील	(श का स)
सिंह	>	सिंघ	(ह का घ)
श्याम	>	स्याम	(श् का स्)

2· शब्द-चयन-

कवि-कौशल शब्द-चयन से ही आँका जा सकता है । कुशल कवि विषयानुसार उपयुक्त शब्दों का उपयुक्त क्रम में चयन करता है । अंग्रेजी के प्रसिद्ध उद्धरण "सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रम काव्य है" ।* में इसी शब्द-चयन की ओर इंगित किया गया है ।

जैसा माना जाता है कि कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे । कविता करना उनका उद्देश्य नहीं था । उन्हें तो सत्य के स्वरूप का निरूपण करना था । उन्होंने सीधी, सरल, स्वाभाविक भाषा में अपनी अनुभूति का वर्णन किया । यहाँ काव्यशास्त्रीय सौन्दर्य अपने आप ही चला आया है । उन्होंने सायास शब्दों का चयन नहीं किया; फिर भी उनकी शब्द-चयन क्षमता अद्भुत है । उनकी इस क्षमता को विभिन्न सन्दर्भों में देखा जा सकता है ।

1-* पोयट्री इज दी बेस्ट वर्ड्स इन बेस्ट आर्डर -कालरिज ·

क॰ छन्द की आवश्यकता-

कवि अपनी रचना में तुक, मात्रा आदि छन्द की आवश्यकता के अनुरूप शब्द-चयन करता है । छन्द की दृष्टि से किया गया शब्द-चयन काव्यभाषा में कोई अतिरिक्त सौन्दर्य उत्पन्न नहीं करता; परन्तु अगर सावधानी न बरती जाय तो इस प्रकार का चयन छन्द में कहीं-कहीं विसंगति भी पैदा कर देता है ।

> घट ही भीतरि बनखंड गिरिवर घट ही भीतरि समुंदा ।
> घट ही भीतरि तारा मंडल घट भीतरि रबि चंदा ।। 1*

यहाँ चन्द्रमा के पर्याय राकापति, रजनीश, राकेश, इन्दु, शशि, हिमकर, सुधाकर, विधु, सुधांशु में से किसी का भी चयन हो सकता था ; परन्तु कवि ने "समुंदा" से तुक मिलाने के लिए "चंदा" का प्रयोग किया है ।

> केसव के कंवला होइ बैठी सिव के भवन भवानीं ।
> पंडा के मूरति होइ बैठी तीरथ हू में पानीं ।। 1**

उद्धृत छन्द में नीर, जल, तोय, वारि, अंबु, पय में से किसी का भी प्रयोग "जल" के लिए किया जा सकता था ; किन्तु कवि ने "भवानीं" से तुक मिलाने के लिए "पानीं" शब्द का प्रयोग किया है ।

1-* क॰ग्रं॰, प॰ 142

1-** क॰ग्रं॰, प॰ 163

ख. अर्थ का सूक्ष्म अन्तर -

शब्दों के अर्थ में सूक्ष्म अन्तर होने के कारण यह स्थूल रूप से दिखायी नहीं पड़ता ; परन्तु कवि-चक्षु से यह ओझल नहीं हो पाता । कबीर-काव्य में इसकी झलक देखी जा सकती है ।

> जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहिं राम ।
> ते नर आइ संसार में, उपजि खए बेकाम ।। - 1*
>
> जहं ते उपजे तहईं समानें हरि पद बिसरा जबहीं ।2*

"उपजना" शब्द वनस्पतियों के लिए प्रयुक्त होता है ; परन्तु यहां कवि ने "जनमि" के स्थान पर "उपजि" प्रयुक्त किया है । इस शब्द के चयन द्वारा कवि यह प्रदर्शित करना चाहता है कि जिन मनुष्यों के हृदय में प्रेम नहीं है तथा जो प्रभु-भजन नहीं करते हैं, उनका जीवन वनस्पतियों से बढ़कर नहीं है । "जनमि" की अपेक्षा "उपजि" हेयार्थी है । दूसरे छन्द में भी "उपजे" इसी अर्थ में प्रयुक्त है । शैली-दृष्टि से यह चयन बड़ा ही सार्थक है ।

ग. व्युत्पत्ति-

कबीर ने अपने काव्य में शब्द-व्युत्पत्ति के आधार पर भी चयन किया है ।

> जाइ रे दिन ही दिन देहा । करि ले बौरी राम सनेहा ।।
>
> राम कहत लज्जा क्यूं कीजे । पल पल आउ घटे तन छीजे ।।

1-* क0ग्रं0, सा0 3-9

2-* क0ग्रं0, प0 199

3-* क0ग्रं0, प0 98

यहाँ शरीर के दो पर्यायों-देह, तन का प्रयोग किया गया है । इनके प्रयोग अपने-अपने स्थान पर सार्थक एवं सुचिंतित हैं । जहाँ शरीर के धीरे-धीरे क्षीण होने की बात कही जा रही है, वहाँ कवि ने "देह" का प्रयोग तथा जहाँ पल-पल में क्षीण होने की बात कही जा रही है, वहाँ "तन" का प्रयोग किया है । देह का धात्वर्थ {दिह + घञ्} स्थूल एवं पुष्ट, तनु का धात्वर्थ {तन् + उन} महीन, दुबला-पतला है । कवि ने अर्थ के अनुरूप ही पर्यायों का चयन किया है ।

बहुत दिनन में प्रीतम आए ।
भाग बड़े घरि बैठें पाए ।।
मंगलवार माहिं मन राखौं । राम रसांइन रसना चाखौं ।।
मंदिर माहिं भया उजियारा ।ले सूती अपना पिय प्यारा ।। [1*]

हरि जननी में बालक तोरा ।
काहे न अवगुन बकसहु मेरा ।।
सुत अपराध करत है केते । जननी के चित रहैं न तेते ।।
कर गहि केस करे जो घाता ।तऊ न हेत उतारे माता।।
कहै कबीर इक बुद्धि बिचारी ।बालक दुखी दुखी महतारी ।। [2*]

मैं सासुरे पिय गौहनि आई ।
साँई संगि साध नहिं पूगी गयौ जोबन सुपिनैं की नाँई ।।
पूरि सुहाग भयो बिन दूलह चौके राँड भई संग साई ।।
अपनें पुरिख मुख कबहूं न देख्यो सती होत समझी समझाई ।।
कहैं कबीर हौं सर रचि मरिहौं तरौं कंत ले तूर बजाई ।। [3*]

1-क0ग्र0,प0 6 2-क0ग्र0,प0 37 3-क0ग्र0,प0 109

माटी के देह पवन के सरीरा । तेहि ठग सों जन डरै कबीरा ।।[1*]

नारि कहावै पीव की, रहै और संग सोइ ।

जार मीत हृदया बसै, खसम खुसी क्यों होइ ।।[2*]

काहे मेरे बाम्हन हरि न कहहि ।

राम न बोलहि पाडे दोजक भरहि ।। [3*]

उपर्युक्त छन्दों में कबीर ने पति के लिए "प्रीतम", "पिय", पुत्र के लिए "बालक","सुत", माता के लिए "माता", "जननी" एवं "महतारी", पति के लिए "पिय","साईं", "पुरिख" एवं "कंत", शरीर के लिए "देह" व "सरीर", पति के लिए "पीव", "खसम", ब्राह्मण के लिए "बाम्हन" व "पाडे" शब्दों का पर्याय-रूप में प्रयोग किया है, जिनके अपने-अपने स्थान पर साभिप्राय एवं सुचिंतित प्रयोग हैं । यही शैली-सौन्दर्य है ।

घ. प्रकरण-उपयुक्तता-

पर्यायवाची शब्दों में से शब्द विशेष का चयन करते समय यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसका अर्थ प्रकरण-विरुद्ध न हो । कबीर-काव्य में प्रकरण-उपयुक्तता देखी जा सकती है -

कहत कबीर सुनहु मेरी माई । पूरनहारा त्रिभुवनराई ।।[4*]

1-* कoग्रंo, पo 139

2-* कoग्रंo, साo 11-5

3-* कoग्रंo, पo 196

4-* कoग्रंo, पo 12

यहाँ भगवान के पर्याय "दीनानाथ," "दीनबन्धु" "परमात्मा", "प्रभु," "ईश्वर," "जगन्नाथ," "परमेश्वर ," "जगन्नियन्ता," "त्रिभुवनपति" में से "त्रिभुवनराई" का चयन सोद्देश्य है । "त्रिभुवनराई" का अर्थ है तीनों लोकों का स्वामी- जो तीनों लोकों का स्वामी हो, उससे तो जीव के भरण-पोषण की आशा की जा सकती है । अस्तु, इस शब्द का चयन प्रकरण की दृष्टि से सर्वथोचित है ।

तूं अथाहु मोहिं थाह नाहिं।प्रभु दीनानाथ दुखु कहउं काहि ।। [1*]

इस छन्द में भी भगवान के पर्याय शब्दों में से "दीनानाथ" का चयन साभिप्राय हुआ है । कवि ने यहाँ अपना दैन्य भाव प्रभु के सामने व्यक्त किया है । उसके दुःख का छुटकारा दीनानाथ ही कर सकते हैं यह उसे भलीभाँति मालूम है; क्योंकि वे दीनों के स्वामी हैं, दीनों की मदद करते हैं ।

जिहिं कुल पूत न ग्यान बिचारी।वाकी बिधवा कस न भई महतारी।। [2*]

कबीर ने माँ के पर्याय "जननी," "माता" शब्दों का चयन न करके लोकभाषा के शब्द "महतारी" का चयन किया है, जो प्रसंगानुकूल है । बच्चे को जन्म देने वाली स्त्री महान होती है। इसी महान अर्थ में "महतारी" शब्द प्रयुक्त है । इस अर्थ की अभि-व्यक्ति माँ के दूसरे पर्यायों द्वारा संभव नहीं थी ।

कबीरदास कहते हैं कि जिस कुल में ज्ञान का विचार करने वाला पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ, उसकी माँ को पहले ही विधवा हो जाना चाहिए था ताकि वह इस महान कार्य (पुत्र-जन्म)

1-* क०ग्रं०, प० 43 2-* क०ग्रं०, प० 64

को न कर पाती; क्योंकि आज उसको भी अपने इस महान कार्य पर ग्लानि हो रही होगी ।

जो सेवग सेवा करै ता लगि रमैं <u>मुरारि</u> ।[1*]

प्रभु-नाम के पर्यायों में से "मुरारि" का चयन साभिप्राय है । प्रभु उसी सेवक के साथ रमण करते हैं, जो उनकी सेवा करता है । वे दुष्ट लोगों का संहार करने वाले हैं तथा भक्तों के रक्षक हैं ।

जनमैं मरै न संकटि आवै नाँव निरंजन जाको रे ।
दास कबीर को <u>ठाकुर</u> ऐसो जाको माई न बापो रे ।।[2*]

उद्धृत छन्द में भगवान के पर्यायों में से "ठाकुर" का चयन साभिप्राय है । यहाँ "ठाकुर" शब्द अपने परम्परागत श्रेष्ठता अर्थ में प्रयुक्त है ।

<u>ङ०-टटकापन तथा असामान्यता-</u>

कवि जब बहुप्रयुक्त घिसे-पिटे शब्दों से अपनी अभिव्यक्ति प्रभावशाली ढंग से नहीं कर पाता, तब उसे कथ्य की भंगिमा बनाये रखने के लिए लोकभाषा या प्राचीन भाषा का सहारा लेना पड़ता है । कबीर ने भी अपने काव्य में टटकापन लाने के लिए लोकभाषा के शब्दों का चयन किया है ; उदाहरणार्थ -

---

1-* क०ग्रं०, प० 82

2-* क०ग्रं०, प० 154

तीन लोक चोरी भई, सबका सरबस लीन्ह ।
बिना मूड़ का चोरवा, परा न काहू चीन्हि ।। [1*]

उद्धृत छन्द में कवि ने लोकभाषा के "मूड़" शब्द का चयन करके अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाया है ।

च. मिश्र -

कभी-कभी शब्द-चयन के आधारों में दो या अधिक का मिश्रण मिलता है । यहाँ हम कबीर की शब्द-चयन-क्षमता पर विचार करेंगे; उदाहरणार्थ -

धनि पिउ एकै संग बसेरा । सेज एक पै मिलन दुहेरा ।। [1**]

सब घटि मेरा साँइयाँ, सूनी सेज न कोइ ।
भाग तिनहु का है सखी, जिहिं घटि परगट होइ ।। [2**]

काहू गरी गोंदरी नाहीं काहू सेज पयारा । [3*]

"सेज" और "शय्या" एक दूसरे के पर्याय हैं; परन्तु कबीर ने उपर्युक्त छन्दों में "सेज" को ही चुना । "शय्या" शब्द रखने पर भी छन्द में कोई विसंगति नहीं आती; किन्तु "सेज" शब्द में श्रृंगारिकता की झलक अधिक है । "शय्या" शब्द तो प्रायः सभी सन्दर्भों में प्रयुक्त होता है; किन्तु "सेज" का प्रयोग प्रायः श्रृंगार तक सीमित है । "सेज" के चयन का दूसरा औचित्य यह है कि

1-* क०ग्रं०, सा० 29-4
1-** क०ग्रं०, प० 11
2-** क०ग्रं०, सा० 4-35
3-** क०ग्रं०, प० 65

"सेज" शब्द "शय्या" की अपेक्षा अधिक कोमल है । "स" ध्वनि की अपेक्षा "श" कठोर है तथा य्य (संयुक्त व्यंजन) एवं दीर्घ स्वर आ "शय्या" को सेज की अपेक्षा और भी कठोर बना देते हैं । अस्तु, सेज का चयन प्रासंगिक है ।

कबीर देखत दिन गया, निसि भी निरखत जाइ ।
बिरहिन पिउ पावै नहीं, जियरा तलफत जाइ ।।[1*]

नैंना अंतरि आव तूं, निस दिन निरखूं तोहिं ।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहिं ।।[2*]

"निरखत" व "निरखूं" के स्थान पर "देखत" व "देखूं" का प्रयोग हो सकता था और छन्द में भी कोई विसंगति न आती। किन्तु "निरखत" व "निरखूं" शब्द से जो भाव व्यंजित हो रहा है वह "देखत" व "देखूं" से न हो पाता । "देखत" या "देखूं" से देखने का सामान्य भाव व्यंजित हो रहा है; परन्तु "निरखत" व "निरखूं" से स्नेह और स्निग्ध भाव से देखना व्यंजित है । "देखत" व "देखूं" की अपेक्षा "निरखत" व "निरखूं" में न, र (द की अपेक्षा अधिक कोमल) कोमल ध्वनियों के कारण कोमलता अधिक है, जो श्रृंगारिक वातावरण के सर्वथा अनुकूल है ।

सबको बूझत मैं फिरूं, रहन कहै नहिं कोइ ।
प्रीति न जोड़ी राम सौं, रहनि कहां तैं होइ ।।[3*]

1-* क0ग्रं0, सा0 2-39
2-* क0ग्रं0, सा0 2-47
3-* क0ग्रं0, सा0 10-15

"रहनि" की व्यंजना विचित्र है । जीवन जब परमात्मा से सम्बन्ध जोड़कर जीवन-यापन करता है तब तो उसका यह जीवन-यापन "रहनि" कहलाता है; किन्तु बिना इसके तो केवल जीना या श्वास लेना है ।

अंशी और अंशी को मिलाने का प्रेम ही माध्यम है । जब तक जीव परमात्मा से प्रेम का सम्बन्ध नहीं जोड़ता तब तक "रहनि" सम्भव नहीं ।

जौन भगत का नित मरन, अनजानें का राज ।
सर अपसर समझे नहीं, पेट भरन सौं काज ।। 1*

सर सृ धातु से बना है, जिसका अर्थ है गमन करना, आगे बढ़ना तथा इसका विलोमार्थी कबीर ने "अपसर" प्रयुक्त किया है । "सर अपसर" का अर्थ हुआ आगे-पीछे चलना (भला-बुरा) । कबीरदास कहते हैं कि भक्त की नित्य मुसीबत है, क्योंकि वह प्रभु-वियोग की वेदना से पीड़ित होता है । अज्ञानी का राज है, क्योंकि वह भले-बुरे का विचार नहीं करता और भौतिक जीवन को ही सर्वस्व मान बैठता है । "अपसर" शब्द का सृजन सर्वथा प्रसंगानुकूल है, अन्य शब्द द्वारा यह भावाभिव्यंजना सम्भव नहीं थी । कबीर की शब्द-चयन-क्षमता अपना अलग ही महत्व रखती है ।

कबीर औगुन नां गहै, गुन ही कौं ले बीनि ।
घट घट महु के मधुप ज्यौं, परमातम ले चीन्हि ।। 2*

कबीर माया डाकिनी, सब काहू कौं खाइ ।
दांत उपारुं पापिनीं, जे संतां नेड़ी जाइ ।। 3*

1-*क०ग्रं०, सा० 4-27 2*-क०ग्रं०, सा० 27-2 3-*क०ग्रं०, सा० 31-6

आगें आगें दौं जरे, पाछे हरियर होइ ।
बलिहारी तेहिं बिरिछ की, जरि काटें फल होइ ।।[1*]

उपर्युक्त छन्द में "बीनि" शब्द लोकभाषा (भोजपुरी) से लिया गया है । इसका अर्थ है-आपस में मिली हुई अनेक वस्तुओं को छाँटकर अलग-अलग करना । मानक साहित्य में ऐसा कोई एक शब्द नहीं है, जिससे यह संश्लिष्ट अभिव्यक्ति हो पाती ।कबीरदास कहते हैं कि लोगों के अवगुण मत ग्रहण करो, उनमें विद्यमान गुण को छाँटकर ग्रहण करो । जिस प्रकार मधुमक्खिका पुष्प से केवल मधु-ग्रहण करती है, उसी प्रकार जीवों में व्याप्त आत्मतत्त्व को ग्रहण करो, अवशिष्ट को छोड़ दो ।

अस्तु, यहाँ "बीनि" शब्द का चयन सार्थक है । इससे कबीर की शब्दों पर जबरदस्त पकड़ प्रदर्शित होती है ।

इसी प्रकार आगे के छन्दों में "उपारू" एवं "हरियर" लोकभाषा (भोजपुरी) के शब्द हैं । कबीर को लोकभाषा से साभिप्राय शब्दों के ग्रहण करने की रुचि को देखकर कहा जा सकता है कि वे जन-कवि थे और उन्होंने अपने उपदेशों को जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न किया ।

3. विदेशी शब्द-चयन -

कबीर ने अपने काव्य में विदेशी शब्दों के चयन में परहेज नहीं किया है । इनके काव्य में जो भी विदेशी शब्द इतस्ततः दिखायी

1-* क0ग्रं0, सा0 13-1

पड़ते हैं, वे स्वाभाविक रूप से आये हैं । कबीर की काव्य-प्रतिभा ने उन्हें अपनी पाचन-शक्ति से अपना ही बना लिया है । कबीर ने अरबी, फारसी के शब्दों को जहाँ भी अपनाया है, उनसे वहाँ की संस्कृति व परिवेश को उजागर किया है; उदाहरणार्थ -

काजी तैं कवन कतेब बखांनीं ।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते गति एकौ नहिं जांनीं ।।
सकति सनेह पकरि करि सुनति मैं न बदउँगा भाई ।
जौ रे खुदाइ तुरुक मोहिं करता तौ आपहिं कटि किन जाई ।।
सुनति कराइ तुरुक जौ होनां तौ औरति कौं का कहिए ।
अरध सरीरी नारि न छूटे तातैं हिंदू रहिए ।।
हिंदू तुरुक कहाँ तैं आए किन एह राह चलाई ।
दिल महिं खोजि देखि खोजादे भिस्ति कहाँ तैं आई ।।
छाड़ि कतेब रांम भजु बउरे जुलुम करत है भारी ।
कबीरै पकरी टेक रांम की तुरुक रहे पचि हारी ।। ।*

उद्धृत छन्द में कबीर ने मुस्लिम सम्प्रदाय में प्रचलित बाह्याचार को व्यर्थ बताया है और कहा है कि प्रभु को अपने हृदय में ही खोजो, अन्यत्र नहीं ।

"काजी" मुसलमानों के न्यायधीश को कहते हैं । "सकति" फारसी भाषा का शब्द है, जिसका शुद्ध रूप "सख्ती" है, जिसका अर्थ है जबर्दस्ती । "सुनति" का शुद्ध रूप "सुन्नत" है । "सुनति" का अर्थ है खतना; किन्तु कुरान में इसका अर्थ "मुहम्मद साहब एवं उनके साथियों का धर्माचरण" बताया गया है । उद्धृत छन्द में इस शब्द से कबीर

।-*   क०ग्रं०, प० 178

का संकेत उधर ही है । इसीलिए वे कहते हैं "फिर तुम लोग "सुन्नत" को खतना कैसे कहते हो ?" कबीर चूंकि मुसलमानों के सन्दर्भ में बात कर रहे हैं, इसलिए वे उसी परिवेश से सम्बन्धित भाषा के शब्दों का प्रयोग करते हैं ।"भिस्ति" का शुद्ध रूप "बिहिस्त" है जिसका अर्थ है स्वर्ग । "जुलुम" अत्याचार-अर्थ में प्रयुक्त है, जिसका शुद्ध रूप "जुल्म" है । यह अरबी भाषा का शब्द है । इस प्रकार "काजी," "कतेब", "सुनति" एवं "जुलुम" अरबी भाषा के तथा "सकति" व "भिस्ति" फारसी भाषा के शब्द हैं ।

लंबा मारग दूरि घर, बिकट पंथ बहु मार ।
कहो संतो क्यों पाइये, दुरलभ हरि दीदार ।।[1*]

सबु पाया सुख उमनां, दिल दरिया भरभूरि ।
सकल पाप सहजै गए, जब साईं मिला हजूरि ।। [2*]

कबीर सेरी सांकरी, चंचल मनुवां चोर ।
गुन गावे लेलीन होइ, कछु इक मन में ओर ।।[3*]

बंदे खोजु दिल हर रोज नां फिरु परेसानी मांहि ।
यहु जु दुनियां सिहरु मेला कोई दस्तगीरी नांहि ।।
बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु न जाइ ।
टुक दम करारी जौ करहु हाजिर हजूर खुदाई ।।
दरागु पढ़ि-पढ़ि खुसी होइ बेखबरु बादु बकाहि ।
हक साच खालिक खलक म्यानें स्याम मूरति नांहि ।।

1--क०ग्रं०, सा० 3-12 2--क०ग्रं०, सा० 9-11 3--क०ग्रं०, सा० 29-10

असमांन म्यानें लहंग दरिया गुसल करदन बूद ।
करि फिकिर दाइम लाइ चसमें जहां तहां मौजूद ।।
अल्लाह पाकंपाक है सक करउ जे दूसर होइ ।
कबीर करम करीम का यह करै जांनें सोइ ।। 1*

कैसौं कहि कहि कूकिये, नां सोइये असरार ।
राति दिवस के कूकनें, कबहुंके लगे पुकार ।। 2*

उद्धृत छन्दों में "हजुरि" (हुजूर) "सिहरा" (सिह्र), "कतेब", "इफतरा", (इफ्तिरा), "फिकर" (फिक्र), "करारी" (करार), "हजूर" (हुजूर), "हक", "खालिक", "खलक", "दाइम", "अल्लाह", सक (शक), "करम", "करीम" एवं "असरार" शब्द अरबी भाषा के तथा "दीदार", "दरिया", "सेरी", "बंदे", "दस्तगीरी", "दम", "दराज़", "बादु" (बाद:), असमांन (आस्मान), "करदनबूद", "चसमें" (चश्म) व "पाकंपाक" फारसी भाषा के शब्द हैं ।

कबीर कहीं इन शब्दों के मूल रूपों का और कहीं इनके विकृत रूपों का, हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल, प्रयोग करते हैं । इससे कवि की भाषाई पाचन-शक्ति का पता चलता है ।

4· रूप-चयन-

कबीर-काव्य में रूप-चयन कम मिलता है । "मानक-अमानक" रूप में रूप-चयन द्रष्टव्य है -

1-* क0ग्रं0, प0 87
2-* क0ग्रं0, सा0 3-4

उपर्युक्त छन्दों में "पतिअइवे", "पोड़े", "तवावहिगे", तथा "जइवे", "बतावहु", "भरमावहु", "आवहिगे", पावहिगे, "मिलावहिगे", "लगावहिगे", "समावहिगे", "दिखलावहिगे", "जाइगा" क्रियाएँ क्रमशः लोकभाषा व मानक भाषा की विकृत रूप हैं। कवि ने यहाँ मानक क्रिया-रूपों के स्थान पर इनका प्रयोग किया है।

5· वाक्य-चयन-

नकारात्मक-सकारात्मक वाक्य - वाक्य-चयन में विकल्प होता है। हम एक ही भाव को नकारात्मक या सकारात्मक वाक्य द्वारा व्यक्त कर सकते हैं; परन्तु प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से दोनों में से किसी एक का चयन करना पड़ता है। यह चयन कभी वाक्य- स्तर पर और कभी शब्द-स्तर पर किया जाता है। कबीर-काव्य में इस प्रकार का चयन द्रष्टव्य है।

बेद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार।
एक कबीरा नां मुवा, जाके राम अधार ।। 1*

प्रस्तुत छन्द में "कबीरा नां मुवा" को कबीर सकारात्मक वाक्य से भी व्यक्त कर सकते थे; किन्तु "मुवा" शब्द पर बल प्रदान करने के लिए उन्हें नकारात्मक वाक्य-चयन करना पड़ा है।

6· मुहावरा-चयन-

मुहावरा को अंग्रेजी में "ईडियम" कहते हैं। यह अरबी भाषा का शब्द है, इसका अर्थ है -"परस्पर बातचीत और सवाल-जवाब"। अरबी भाषा में इसका अर्थ संकुचित है, किन्तु हिन्दी भाषा

1-* क०ग्रं०, सा० 19-2

में इसका क्षेत्र व्यापक हो गया है । मुहावरों की अर्थ-प्रतीति सदैव लक्षणा व व्यंजना शब्द-शक्तियों द्वारा होती है ।

मुहावरा किसी भाषा में वह अपूर्ण वाक्यखण्ड है, जिसकी उपस्थिति से वाक्य में रोचकता, चुस्ती एवं - प्रभावान्विति आ जाती है । यह लोकसंचित निधि है ।लोक में जिन चीजों, व्यवहारों को जाँचा-परखा गया, अनुभव किया गया, उन्हीं को पदबन्धता का रूप दे दिया गया, जो मुहावरे कहलाये । कबीर-काव्य में मुहावरों की छटा दर्शनीय है, जो सहज रूप से उसमें आ गयी है ।

रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि पाखंड अभिमान ।
ऐसा जे जन होइ रहै, ताहि मिले भगवान ।। [1*]

प्रीति रीति तो तुझ सौं, मेरे बहु गुनियाले कंत ।
जो हँसि बोलूं और सौं, तो नील रँगाऊं दंत ।। [2*]

दीन गँवाया दुनीं सौं, दुनीं न चाली साथि ।
पाँव कुल्हाड़ी मारिया, गाफिल अपनें हाथि ।। [3*]

उपर्युक्त छन्दों में "रोड़ा होइ रहु बाट का" (बाट का रोड़ा होना), "नील रँगाऊं दंत" और "पाँव कुल्हाड़ी - मारिया" (पाँव में कुल्हाड़ी मारना) मुहावरों के प्रयोग से सशक्त अभिव्यक्ति हुई है ।

1-- क0ग्रं0,सा0 19-6   2--क0ग्रं0,सा0 11-7   3--क0ग्रं0,सा0 15-2

7. लोकोक्ति-चयन-

लोकोक्तियाँ लोकमानस की पारस्परिक अभिव्यक्ति हैं, जिनके लघु रूप में विराट प्रभाव समाहित रहता है । इन लोकोक्तियों में जीवन-बोध के ऐसे आयाम खुलते हैं, जो लोक-चिन्तन और लोकचेतना के प्रतिरूप होते हैं । कहा तो यह जा सकता है कि लोकोक्तियाँ ग्रामीण जनता को परम्परा से प्राप्त नीतिशास्त्र हैं, जिनमें लोकजीवन के सत्य लोकानुभव और लोकरचना धर्मिता मूर्त होती है ।

लोकोक्तियों में अभिव्यक्ति की अत्यन्त तीव्रता विद्यमान रहती है । लोकोक्तियों में सहजता, स्वाभाविकता और कथन की आयासहीनता होती है । इसमें प्रभाव की अगणित तरंगे फूटती हैं । लोकोक्तियों के अनाम रचनाकार ने जो व्यंजना की है, वह परिनिष्ठित साहित्य के बड़े से बड़े व्यन्जनाकार नहीं कर सकते । इनमें लोकमानस की प्रवहमान संवेदनायें उद्दीप्त होती रहती हैं ।

जून 1955 के "साहित्य-संदेश" में लोकोक्तियों की परिभाषा देते हुए डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है - "लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए स्त्रोत हैं । जिस प्रकार अनन्त काल तक धातुओं को तपाकर सूर्यरश्मि नाना प्रकार के रत्नों, उपरत्नों का निर्माण करती है, जिनका आलोक छिटकता रहता है । उसी प्रकार लोकोक्तियाँ भी मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभवों की किरण ज्योति प्राप्त होती है ।"

डॉ0 अग्रवाल की परिभाषा से स्पष्ट है कि लोकोक्तियाँ 1•क्रान्तिकारी होती हैं 2•लोकबुद्धि की ज्योतिका होती हैं 3•सुगम अभिव्यक्ति होती हैं 4•चुभती हुई भाषा में मानवीय ज्ञान की प्रतिमूर्ति होती हैं ।

लोकोक्तियाँ लोकजीवन के विविध पक्षों का ऐसा अध्ययन हैं, जिनमें एक ओर तो अतीत के लोक-निर्णय रहते हैं तो दूसरी ओर आगामी कल के लिए पथ-निदर्शन भी रहता है । लोकोक्तियाँ लोकजीवन के शाश्वत मूल्यों का कोश हैं । इनमें समसामयिक धरातल पर पारस्परिक लोकजीवन अटूट रूप से प्रवाहित होता रहता है । लोकोक्तियाँ समसामयिक जीवन, सामाजिक और राजनीतिक उद्वेलन के प्रति बड़ी ही सजग होती हैं ।

कबीर-साहित्य में लोकोक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

कबीर करनी क्या करे, जौ रांम न करे सहाइ ।
जिहिं जिहिं डारी पग धरौं, सोइ नइ नइ जाइ ।।[1*]

रांम नांम जांनो नहीं, लागी मोटी खोरि ।
काया हांड़ी काठ की, नां ऊ चढ़ै बहोरि ।। [2*]

जिन हरि जैसा जांनिया, तिनकौं तैसा लाभ ।
ओसां प्यास न भाजई, जब लगि धसै न आभ ।। [3*]

1-* क0ग्रं0, सा0 8-3
2-* क0ग्रं0, सा0 15-18
3-* क0ग्रं0, सा0 3-19

जद का माई जनमिया, कदे न पाया सुख ।
डारी डारी मैं फिरौं, पातैं पातैं दुख ।। [1*]

न्यौति जिमाऊँ अपनों करहा छार मुनिस की दाढ़ी रे । [2*]

उद्धृत छन्दों में "जिहिं जिहिं डारी पग धरौं,सोइ नइ नइ जाइ" (जहाँ जाय आढ़ो रानी उहाँ पड़े पाथर पानी), "काठ की हाड़ी नां चढ़े बहोरि" (काठ की हाड़ी चढ़े न दूजी बार), "ओसां प्यास न भाजई" (ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती), "डारी डारी मैं फिरौं, पातैं पातैं दुख" (डाल-डाल में पात-पात), "छार मुनिस की दाढ़ी" (दाढ़ी में आग लगे या छार पड़े) आदि लोकोक्तियों का कबीर ने प्रकारान्तर से प्रयोग किया है । ये लोकोक्तियाँ अभिव्यक्ति के स्तर पर बड़ी ही प्रभावशाली हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर की शब्द-योजना उदभुत है । उसमें शब्दों की ईंट इस प्रकार लगी हैं कि एक भी ईंट निकाल देने से सारा काव्यात्मक सौन्दर्य समाप्त हो जायेगा ।

1-* क०ग्रं०, सा० 6-6
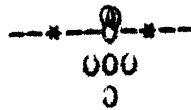
2-* क०ग्रं०, प० 131
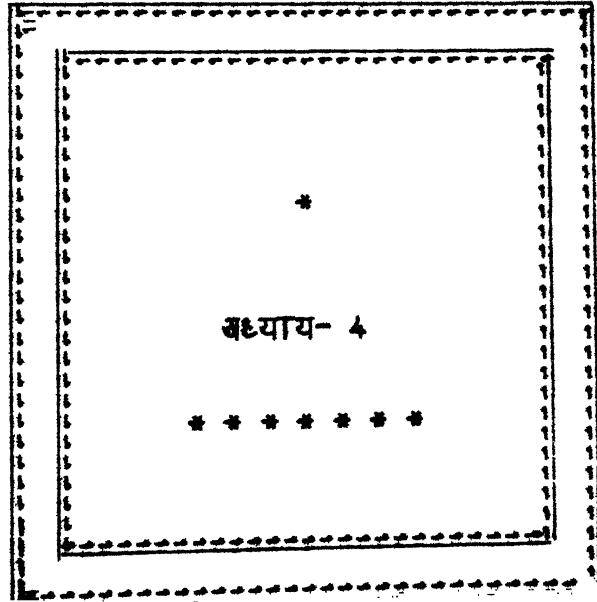
*
अध्याय- 4
* * * * * * *

*

कबीर-काव्य में विचलन

*

विचलन

भाषा के अपने नियम होते हैं । ये नियम ही उसकी व्यवस्था के हेतु होते हैं । व्याकरण इन्हीं नियमों की व्याख्या करता है । सामान्य भाषा केवल सामान्य अनुभवों को ही व्यक्त कर सकती है, विशिष्ट को नहीं । काव्य-अनुभूति विशिष्ट होती है और उसकी अभिव्यक्ति के लिए सामान्य भाषा को विशिष्ट भाषा बनना पड़ता है । इस प्रक्रिया में काव्यभाषा सामान्य भाषा के नियम, बंधन, पथ से परे जाकर नव्य मार्ग का अनुसरण करती है, यही विचलन है ।

कवि की विशिष्ट अनुभूति उसे काव्य-सृजन के लिए प्रेरित करती है । यहाँ कवि सामान्य भाषा से विद्रोह करके विशिष्ट भाषा का सहारा लेता है । पश्चिमी साहित्य में "पोयटिक लाइसेंस" {कवि द्वारा ली गयी छूट} और संस्कृत में भर्तृहरि का प्रसिद्ध श्लोक "निरंकुशा: कवय:" {कवि निरंकुश होते हैं} के संकेत इसी विचलन की ओर हैं । पश्चिमी सौन्दर्यशास्त्र तथा शैलीविज्ञान के फोरग्राउंडिंग {नव्य व्यवस्था} एवं भारतीय काव्यशास्त्र के "वक्रोक्ति" शब्दों में इसी विचलन की स्पष्ट झलक है ।

विचलन साभिप्राय होना चाहिए ; केवल विचलन के लिए विचलन काव्यभाषा का दोष है । विचलन करते समय कवि को सजग दृष्टि रखनी पड़ती है; अन्यथा यह विचलन हास्यास्पद एवं प्रभावहीन हो जाता है । आधुनिक कवियों में [illegible] कहीं- कहीं केवल चौंकाने के लिए प्रयुक्त हुआ है , जो सर्वथा अवांछनीय है ।

कबीर की काव्यभाषा में विचलन के सर्जनात्मक प्रयोग मिलते हैं, उन्हें क्रमशः उदाहरणार्थ लिया जा रहा है ।

शब्द-विचलन

1· संज्ञा-विचलन -

संज्ञा-विचलन किसी न किसी कारक के रूप में मिलता है, क्योंकि संज्ञा शब्दों का भाषा में प्रयोग किसी न किसी कारक के रूप में होता है । यथा-

कर्म - केसों कहा बिगारिया, जे मूड़े सो बार ।
मन कों काहे न मूड़िए, जामें बिखे बिकार ।। [1*]

उपर्युक्त छन्द में कबीर ने मन को मूड़ने की बात की है । मूड़ने की क्रिया बालों के साथ होती है, अमूर्त पदार्थों के साथ नहीं । यहाँ मन कर्म रूप में प्रयुक्त है । कवि ने बालों के मूड़ने के सादृश्य पर मन को मूड़ने की बात कही है । प्रयोग से भाषिक सर्जनात्मकता का परिचय मिलता है ।

2· क्रिया-विचलन -

काव्यभाषा में क्रिया के विचलित प्रयोग मिलते हैं, जिन्हें कबीर की काव्यभाषा में देखा जा सकता है ।

कबीर मारूं मन कों, टूक टूक होइ जाइ ।
बिख की क्यारी बोइ करि, लुनत कहा पछताइ ।। [2*]

1-* क०ग्रं०, सा० 25-4 2-* क०ग्रं०, सा०-29-11

उद्धृत छन्द में मन को मारने की बात कही गयी है । मारना क्रिया जीवों के लिए प्रयुक्त होती है, अमूर्त पदार्थों के लिए नहीं । यहाँ "मारू" क्रिया विचलित रूप में प्रयुक्त है । इस क्रिया के अर्थ में विस्तार हुआ है ।

कर पकरै अंगुरी गिनैं, मन धावै चहुं ओर ।
जाहि फिरायां हरि मिलै, सो भया काठ की ठोर ।।[1*]

यहाँ मन के बारे में वर्णन किया गया है । "धावे" क्रिया तो मनुष्य व पशुओं तथा अन्य जीवों के लिए प्रयुक्त होती है, जो दौड़ते हैं, किन्तु यहाँ अमूर्त "मन" के लिए आयी है, जो विचलित प्रयोग है । सादृश्य के आधार पर यह क्रिया लायी गयी है । यहाँ क्रिया-विचलन का सर्जनात्मक प्रयोग हुआ है ।

3. वाग्भाग (पार्ट्स आँफ़ स्पीच) -विचलन -

कभी-कभी ऐसी आवश्यकता पड़ती है कि भाषा में प्राप्त संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण आदि शब्दों को विचलित रूप में, एक वाग्भाग से दूसरे वाग्भाग में, प्रयुक्त किया जाता है । ऐसा तब होता है जब हम भाषा में उपलब्ध नियमों के अनुरूप अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति नहीं कर पाते । उस स्थिति में मजबूरन इस नियम-बंधन से परे जाना पड़ता है । कभी-कभी भावों को बिखराव से बचाने के लिए एक शब्द का प्रयोग करना पड़ता है । उस स्थिति में भी सामान्य नियमों का अतिक्रमण करना पड़ता है । इन विचलनों के उदाहरण कबीर-काव्य में द्रष्टव्य हैं ।

1-* क0ग्रं0, सा0 25-7

संज्ञा से क्रिया -

राम नाम के पटतरे, देबे कौं कछु नाहिं ।
क्या ले गुरु संतोखिए, हौंस रही मन माहि ।।[1*]

उद्धृत छन्द में कबीर ने "संतोष" संज्ञा से "संतोखिए" क्रिया बनायी है (एक वाग्भाग का दूसरे वाग्भाग के रूप में प्रयोग किया है), जो विचलित प्रयोग है ।

विचलन की दूसरी स्थिति वहाँ आयी है, जहाँ कवि ने अपनी संश्लिष्ट अभिव्यक्ति के लिए "संतोष करना" क्रिया को "संतोखिए" के रूप में एक शब्द द्वारा व्यक्त किया है । जिससे भाव बिखरने से बच गये हैं ।

रसनां रसहिं बिचारिए सारंग श्रीरंगधार रे ।[2*]

प्रस्तुत पद्य में "विचार" संज्ञा से "बिचारिए" क्रिया, वाग्भाग विचलन के रूप में, बनायी गयी है ।

विचलन की दूसरी स्थिति संश्लिष्ट अभिव्यक्ति के लिए आयी है जहाँ कवि ने "विचार करना" क्रिया के स्थान पर "बिचारिए" एक शब्द द्वारा अपना भाव व्यक्त किया है ।

झूठे तन कौं क्या गरबावे ।[3*]

उपर्युक्त छन्द में "गर्व" संज्ञा शब्द से "गरबावे" क्रिया बनायी गयी है ।

विचलन की दूसरी स्थिति में कवि ने संश्लिष्ट अभिव्यक्ति के लिए "गर्व करना" क्रिया को "गरबावे" एक शब्द द्वारा व्यक्त किया है ।

1-* क०ग्रं०, सा० 1-1;   2-*क०ग्रं०, प०10;   3-*क०ग्रं०, प० 62

संज्ञा से विशेषण -

कबीर पीर पिरावनी, पंजर पीर न जाइ ।
एक जु पीर परीति की, रही कलेजा छाइ ।। 1*

प्रस्तुत छन्द में कबीर ने "पीर" संज्ञा से "पिरावनी" विशेषण बनाया है । यहाँ "पिरावनी" का विशेषणवद् प्रयोग है ।

4. मानक-विचलन -

साहित्यकार जब मानक साहित्य के शब्दों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति नहीं कर पाता तो उसे विचलन करना पड़ता है । मानक साहित्य में कुछ शब्द बार-बार प्रयुक्त होने के कारण अपनी अर्थवत्ता खो देते हैं तथा उनकी कोरें घिस जाती हैं । ऐसी स्थिति में - साहित्यकार मानक साहित्य के शब्दों के स्थान पर लोकभाषा या प्राचीन भाषा के शब्दों का प्रयोग करता है । ऐसे शब्दों में एक प्रकार की ताज़गी होती है और ये अभिव्यक्ति के स्तर पर अधिक प्रभावी व सशक्त होते हैं ।

डॉ० माताबदल जायसवाल ने अपने शोध-ग्रंथ में कबीर की भाषा को हिंदवी[2*] कहा है । डॉ० जायसवाल द्वारा दिये गये निष्कर्षों के आधार पर कबीर की भाषा अगर खड़ी हिन्दी मान ली जाय तो कबीर-काव्य में मानक-विचलन के प्रयोग देखे जा सकते हैं ;उदाहरणार्थ -

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरताँ हरि नाउँ ।
सूरी ऊपरि खेलना, गिरे त नाहीं ठाउँ ।। 3*

1-* क०ग्रं०, सा० 2-33.
2-* डॉ० माता बदल जायसवाल -कबीर की भाषा; पृ० 23।
3-* क०ग्रं०, सा० 3-5

हौं चितवत हौं तोहि कौं, तू चितवत कछु और ।
कहै कबीर कैसे बनें, एक चित्त दुइ ठौर ।।[1*]

एक कनक अरु कामिनी, दोइ अगिन की झाल ।
देखें ही तैं परजरे, परसां ह्वे पैमाल ।।[2*]

नीर पियावत का फिरे, सायर घर घर बारि ।
त्रिखावंत जो होइगा, पीवैगा झख मारि ।। [3*]

कबीर बिचारा करे बीनती, भौ सागर के ताईं ।
बंदे ऊपरि जोर होत है, जम कौं बरजि गुसाईं ।।[4*]

रांम कहा तिन कहि लिया, जरा पहूंची आइ ।
लागी मंदिर द्वार तैं, अब क्या काढ़ा जाइ ।। [5*]

लालन की ओबरी नहीं, हंसन की नहिं पांति ।
सिंहन के लेंहड़ा नहीं, साधु न चलैं जमाति ।। [6*]

आइ न सक्कौं तुज्झ पै, सकूं न तुज्झ बुलाइ ।
जियरा यौं ही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ ।। [7*]

1-* क०ग्रं०, सा० 11-6

2-* क०ग्रं०, सा० 30-10

3-* क०ग्रं०, सा० 15-12

4-* क०ग्रं०, सा० 6-12

5-* क०ग्रं०, सा० 16-13

6-* क०ग्रं०, सा० 4-18

7-* क०ग्रं०, सा० 2-32

कबीर देखत दिन गया, निसि भी निरखत जाइ ।
बिरहिन पिउ पावै नहीं, जियरा तलफ्त जाइ ।। [1*]

साँई संगि साध नहिं पूजी गयौ जोबन सुपिनैं की नाँईं ।[2*]

उपर्युक्त छन्दों में "ठाँउ", "चितवत", "ठौर", "पैमाल", "झखमारि", "बरजि", "काढ़ा", "ओबरी", "लेंहड़ा", "जमाति", "जियरा", "निरखत", "तलफ्त" और "साध" लोकभाषा (भोजपुरी, अवधी) से लिये गये हैं । "ठाँउ" स्थान-अर्थ में "चितवत" ध्यानपूर्वक (दत्तचित्त होकर) देखने के अर्थ में, "ठौर" स्थान के अर्थ में, "पैमाल" नष्ट होने के अर्थ में, "झखमारि" जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता होगी, उसके लिए वह स्वयं प्रयास करेगा के अर्थ में, "बरजि" मना करने या रोकने के अर्थ में, "काढ़ा" निकालने- अर्थ में, "ओबरी" कमरे के अर्थ में (जिसमें पति-पत्नी रहते हों), "लेंहड़ा" झुण्ड-अर्थ में, "जमाति" समूह-अर्थ में, "जियरा" प्राण -अर्थ में (यहाँ "जियरा" दाम्पत्य सम्बन्धों में प्रयुक्त होने के कारण श्रृंगारिक वातावरण की सृष्टि कर रहा है), "निरखत" स्नेह-स्निग्ध आँखों से देखने के अर्थ में, "तलफ्त" असह्य पीड़ा के अर्थ में, "साध" लालसा-अर्थ में (श्रृंगारिक वातावरण की सृष्टि कर रहा है) प्रयुक्त हुए हैं । इन शब्दों के द्वारा जो प्रभावी अभिव्यक्ति हो रही है, वह मानक शब्दों के द्वारा सम्भव नहीं है । अस्तु, यहाँ विचलन साभिप्राय हुआ है ।

1-* कoग्रं0, सा0 2-39

2-* कoग्रं0, प0 109

कबीर देखंत दिन गया, निसि भी निरखत जाइ ।
बिरहिन पिउ पावै नहीं, जियरा तलफत जाइ ।। 1*

साँई सँगि साध नहिं पूजी गयौ जोबन सुपिनैं की नाँई ।2*

उपर्युक्त छन्दों में "ठाँउ", "चितवत", "ठौर", "पैमाल", "झखमारि", "बरजि", "काढ़ा", "ओबरी", "लेंहड़ा", "जमाति", "जियरा", "निरखत", "तलफत" और "साध" लोकभाषा {भोजपुरी, अवधी} से लिये गये हैं । "ठाँउ" स्थान-अर्थ में "चितवत" ध्यानपूर्वक {दत्तचित्त होकर} देखने के अर्थ में, "ठौर" स्थान के अर्थ में, "पैमाल" नष्ट होने के अर्थ में, "झखमारि" जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता होगी, उसके लिए वह स्वयं प्रयास करेगा के अर्थ में, "बरजि" मना करने या रोकने के अर्थ में, "काढ़ा" निकालने- अर्थ में, "ओबरी" कमरे के अर्थ में {जिसमें पति-पत्नी रहते हों}, "लेंहड़ा" झुण्ड-अर्थ में, "जमाति" समूह-अर्थ में, "जियरा" प्राण -अर्थ में {यहाँ "जियरा" दाम्पत्य सम्बन्धों में प्रयुक्त होने के कारण शृंगारिक वातावरण की सृष्टि कर रहा है}, "निरखत" स्नेह-स्निग्ध आँखों से देखने के अर्थ में, "तलफत" असह्य पीड़ा के अर्थ में, "साध" लालसा-अर्थ में {शृंगारिक वातावरण की सृष्टि कर रहा है} प्रयुक्त हुए हैं । इन शब्दों के द्वारा जो प्रभावी अभिव्यक्ति हो रही है, वह मानक शब्दों के द्वारा सम्भव नहीं है । अस्तु, यहाँ विचलन साभिप्राय हुआ है ।

1-* कoग्रंo, साo 2-39

2-* कoग्रंo, पo 109

अकाज,[1*] अकारथ,[2*] कमाई,[3*] गंवारा,[4*] गोरू,[5*] गंवाया,[6*] चिरकुट,[7*] चुहाड़ा,[8*] चखि,[9*] चोटा,[10*] जुझाउर,[11*] जंहडाइ,[12*] जंवाई,[13*] डेरा,[14*] डंहके,[15*] तमाचा,[16*] दिसावरि,[17*] पतियाइ,[18*] पैंड़ा,[19*] पाहुना,[20*] पोड़े[21*]

1-* कoग्रo, साo 11-8

2-* कoग्रo, पo 100

3-* कoग्रo, पo 65

4-* कoग्रo, पo 72

5-* कoग्रo, पo 188

6-* कoग्रo, पo 74

7-* कoग्रo, पo 65

8-* कoग्रo, पo 65

9-* कoग्रoपृo173

10-* कoग्रo, पo 74

11-* कoग्रo, पo 59

12-* कoग्रo, पo 15

13-* कoग्रo, पo 164

14-* कoग्रo, पo 59

15-* कoग्रo, पo 164

16-* कoग्रo, साo 11-3

17-* कoग्रo, पo 151

18-* कoग्रo, साo 7-8

19-* कoग्रo, पo 144

20-* कoग्रo, पo 33

21 -* कoग्रo, पo 34

बरेडे,[1] बेगाना,[2] बिलात,[3] बहुरिया,[4] माई,[5] मटिया,[6]
मेहरी,[7] मरहट(मरघट),[8] रहासहा,[9] लुखा (रूखा),[10] लुकाइ[11]

सन्दर्भित सभी शब्दों को कबीर ने लोकभाषा (भोजपुरी, अवधी), से लिया है । कवि ने अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए मानक साहित्य के शब्दों के स्थान पर लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग किया है । यहाँ विचलन का प्रयोग सर्जनात्मक है ।

5. क्रम-विचलन-

हर भाषा में पदों के अपने-अपने क्रम होते हैं । किन्तु काव्यभाषा में पदों का क्रम वही नहीं रहता जो सामान्य भाषा में होता है । काव्यभाषा में पदों का अपना अलग क्रम होता है । इसीलिए लोग प्रायः कविता के छन्दों का अन्वय करके अर्थ समझते - समझाते हैं । काव्यभाषा में भी कभी-कभी सामान्य भाषा का पदक्रम

1-* कoग्रंo, पo 134

2-* कoग्रंo, पo 134

3-* कoग्रंo, पo 73

4-* कoग्रंo, पo 136

5-* कoग्रंo, पo 12, 100

6-* कoग्रंo, पo 100

7-* कoग्रंo, पo 100

8-* कoग्रंo, पo 100

9-* कoग्रंo, पo 164

10-* कoग्रंo, साo 29-5

11-* कoग्रंo, साo 7-8

बरेडे,[1*] बेगाना,[2*] बिलात,[3*] बहुरिया,[4*] माई,[5*] मटिया,[6*]

मेहरी,[7*] मरहट ﴾मरघट﴿,[8*] रहासहा,[9*] लूखा ﴾रूखा﴿,[10*] लुकाइ[11*]

सन्दर्भित सभी शब्दों को कबीर ने लोकभाषा ﴾भोजपुरी, अवधी﴿, से लिया है । कवि ने अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए मानक साहित्य के शब्दों के स्थान पर लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग किया है । यहाँ विचलन का प्रयोग सर्जनात्मक है ।

5· क्रम-विचलन-

हर भाषा में पदों के अपने-अपने क्रम होते हैं । किन्तु काव्यभाषा में पदों का क्रम वही नहीं रहता जो सामान्य भाषा में होता है । काव्यभाषा में पदों का अपना अलग क्रम होता है । इसीलिए लोग प्राय: कविता के छन्दों का अन्वय करके अर्थ समझते - समझाते हैं । काव्यभाषा में भी कभी-कभी सामान्य भाषा का पदक्रम

1-* क०ग्रं०, प० 134

2-* क०ग्रं०, प० 134

3-* क०ग्रं०, प० 73

4-* क०ग्रं०, प० 136

5-* क०ग्रं०, प० 12, 100

6-* क०ग्रं०, प० 100

7-* क०ग्रं०, प० 100

8-* क०ग्रं०, प० 100

9-* क०ग्रं०, प० 164

10-* क०ग्रं०, सा० 29-5

11-* क०ग्रं०, सा० 7-8

छन्द की दृष्टि से ठीक बैठता है; परन्तु कवि किसी विशेष उद्देश्य से इस क्रम को परिवर्तित कर देता है । कबीर-काव्य में इस प्रकार के विचलन कम पाये जाते हैं; उदाहरणार्थ :-

तीरथि चाले दुइ जनां, चित चंचल मन चोर ।
एको पाप न काटिया, लादा मन दस और ।।[1*]

उद्धृत छन्द में "लादा मन दस और" को "दस मन लादा और" कर दिया जाता तो व्याकरणिक दृष्टि से ठीक होता तथा छन्द में भी कोई विसंगति न आती; परन्तु कबीर ने ऐसा क्यों नहीं किया, विचारणीय प्रश्न है । चूँकि "लादा" क्रिया एवं वजन करने की इकाई "मन" पर बल प्रदान करना था, इसलिए कवि ने प्राथमिकता के अनुसार इस क्रम को परिवर्तित कर दिया । प्रयोग की दृष्टि से यह विचलन सर्जनात्मक है, सम्प्रेष्य को बल प्रदान करता है और शैली की दृष्टि से वांछनीय है ।

6. सहप्रयोग-विचलन: मानवीकरण -

सहप्रयोग का अर्थ है- साथ-साथ प्रयोग । भाषा में संज्ञा महत्वपूर्ण होती है । क्रिया और विशेषण उसी के बारे में कुछ कहते हैं । हर भाषा में क्रिया और विशेषण के प्रयोग सीमित होते हैं; किन्तु साहित्यकार अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति के लिए इन प्रयोग-बंधनों का अपनी सर्जनात्मक कल्पना के द्वारा अतिक्रमण करके निर्धारित सहप्रयोग से विचलन करता है । इस विचलन द्वारा अभिव्यक्ति में टटकापन आ जाता है और कथ्य अधिक आकर्षक हो जाता है । अभिधा शब्द-शक्ति के स्थान पर लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्तियाँ कार्य करने लगती हैं ।

1-* क०ग्रं०, सा० 26-4

पाश्चात्य काव्यशास्त्र का "परसॉनिफिकेशन" हिन्दी में मानवीकरण है । वस्तुतः मानवीकरण सहप्रयोग -विचलन ही है । इस विचलन के पीछे मुख्य रूप से सादृश्य-विधान कार्य करता है और इस विचलन द्वारा क्रिया के प्रयोग एवं अर्थ में विस्तार हो जाता है; उदाहरणार्थ :-

धौं की दाधी लाकरी, ठाढ़ी करे पुकार ।

मति बसि परौं लुहार के, जारे दूजी बार ।।[1*]

इसे चित्र-रूप में यों समझाया जा सकता है -

करे पुकार	सामान्य सह-प्रयोग	स्त्री - पुरुष के साथ
	सहप्रयोग का विचलन	स्त्री-पुरुष को छोड़कर अन्यों के साथ

उपर्युक्त रेखाचित्र से आशय यह है कि "करे पुकार" क्रिया का सहप्रयोग स्त्री-पुरुष के साथ ही भाषा में स्वीकृत है, अन्यों के साथ नहीं (पशु, जीव एवं अन्य निर्जीव पदार्थ); किन्तु यहाँ इसका प्रयोग निर्जीव पदार्थ लकड़ी के साथ हुआ है, जो सहप्रयोग-विचलन है । लकड़ी का मानवीकरण किया गया है ।

1-* क0ग्रं0, सा0 16-2

कबीर माया मोहनीं, मोहै जांन सुजांन ।
भागा हूं छाड़ै नहीं, भरि भरि मारै बान ।।[1*]

कबीर माया डाकिनीं, सब काहू कौं खाइ ।
दांत उपारूं पापिनीं, जे संतां नेड़ी जाइ ।।[2*]

माली आवत देखि के, कलियां करैं पुकार ।
फूली फूली चुनि गईं, काल्हि हमारी बार ।।[3*]

पात झरंता यों कहै, सुनि तरवर बनराइ ।
अब के बिछुड़े नां मिलैं, कहूं दूर पड़ैंगे जाइ ।।[4*]

आपहिं आप बंधाइया दोइ लोचन मरहिं पियास रे ।[5*]

"बाण मारने की" क्रिया मनुष्य द्वारा सम्पन्न होती है, परन्तु यहां उद्धृत छन्द में अमूर्त पदार्थ "माया" द्वारा सम्पन्न करायी जा रही है । यहां, सहप्रयोग-विचलन द्वारा माया का मानवीकरण किया गया है । "खाइ" क्रिया का प्रयोग मानव, पशु एवं जीव के साथ, होता है, "करैं पुकार", "कहै" क्रिया का प्रयोग मनुष्यों के साथ होता है; किन्तु यहां इनका प्रयोग क्रमशः अमूर्त पदार्थ माया, कलियों और पत्र के साथ हुआ है । अस्तु, यहां सहप्रयोग-विचलन के द्वारा माया, कलियों एवं पत्र का मानवीकरण किया गया है । "मरहि" प्यास से मरने की क्रिया मनुष्य एवं जीवों के साथ होती है; किन्तु

1-* क०ग्रं०, सा० 31-4
2-* क०ग्रं०, सा० 31-8
3-* क०ग्रं०, सा० 16-34
4-* क०ग्रं०, सा० 16-36
5-* क०ग्रं०, प० 10

यहाँ नेत्रों का प्यास से मरना द्योतित किया गया है । इस सर्जनात्मक सहप्रयोग-विचलन द्वारा विरहावस्था में नेत्रों की असीम तड़फड़ाहट को व्यंजित किया गया है । इन सभी विचलित प्रयोगों को पूर्वांकित रेखा-चित्र की भाँति समझाया जा सकता है ।

उपर्युक्त पाँच छन्दों में कवि ने सहप्रयोग-विचलन द्वारा काल एवं माया की भयंकरता द्योतित की है तथा अन्तिम छन्द में प्रभु-दर्शन के लिए जीव की असीम तड़फड़ाहट व्यंजित की है । इन सभी छन्दों में विचलन साभिप्राय हुआ है । कहीं भी कोई प्रयोग खटकता नहीं है ।

---*---

0
000
00000
000
0

* *
अध्याय-5
*

*
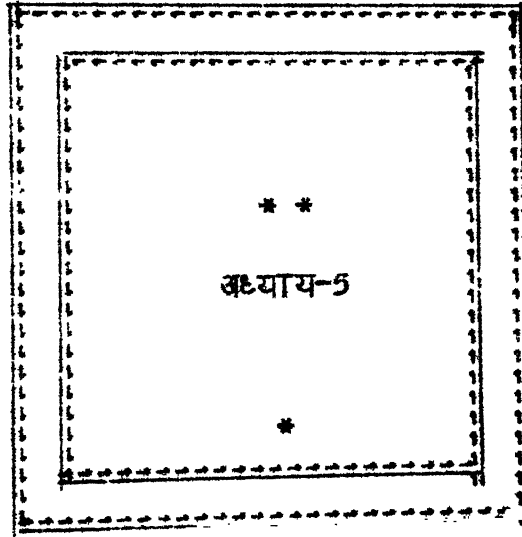
कबीर-काव्य में अप्रस्तुत-विधान

* * *

अप्रस्तुत-विधान

काव्य में "अप्रस्तुत" का अर्थ है -जो प्रस्तुत न हो; अर्थात् जो वर्ण्य या कथ्य नहीं है, उसे अप्रस्तुत कहा जाता है। साहित्यकार अप्रस्तुत को प्रस्तुत के वर्णन के लिए एक शैलीय उपकरण के रूप में प्रयुक्त करता है। इसके द्वारा साहित्यकार अपनी रचना में जीवंतता एवं प्राण फूंक देता है, जिससे रचना सर्जनात्मक हो जाती है। अप्रस्तुत-विधान द्वारा वह अपने कथ्य को अधिक-प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है। इस अप्रस्तुत-विधान के पीछे सादृश्य या साम्य कार्य करता है। यह सादृश्य रूप, आकार, प्रभाव, धर्म एवं क्रिया का हो सकता है। प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत में यह सादृश्य या साम्य जितना ही अधिक होगा, अप्रस्तुत-विधान की भावोद्बोधन-शक्ति उतनी ही अधिक होगी। ऐसा न होने पर शैली दोषपूर्ण हो जायेगी। कभी-कभी साधारण कथन से भी सशक्त अभिव्यक्ति होती है। वहाँ यह योजना अनावश्यक व फीकी प्रतीत होती है।

अप्रस्तुत-विधान का प्रयोग विश्व की सभी साहित्यिक भाषाओं में होता रहा है। अप्रस्तुत-विधान में साहित्यकार चिर-परिचित एवं लोक में मान्य वस्तुओं के सहारे नयी वस्तुओं का बोध कराता है; उदाहरणार्थ - "राधा का मुख चन्द्रमा - सा है।" में "मुख" प्रस्तुत, "चन्द्रमा" अप्रस्तुत है। जगत में चन्द्रमा अपनी शीतलता एवं कान्ति के लिए प्रसिद्ध है। कवि उसी शीतलता एवं कान्ति की झलक राधा के मुख में भी पा रहा है, जिसकी संयोजना उसने अप्रस्तुत-विधान द्वारा की है।

काव्य में अप्रस्तुत की व्यवस्था करना या लाना अप्रस्तुत-विधान कहलाता है । कवि अपने काव्य में अप्रस्तुत का प्रयोग प्रभावान्विति, सौन्दर्य-साधन तथा अभिव्यक्ति के स्पष्टीकरण के लिए करता है ।

अप्रस्तुत-विधान के स्त्रोत

अप्रस्तुतों के स्त्रोत की कोई सीमा नहीं है । कवि या लेखक इच्छानुकूल प्रसंग और स्थिति-भेद से भिन्न-भिन्न - अप्रस्तुतों का विधान कल्पना के सहारे करता है । अप्रस्तुतों के स्त्रोतों का वर्गीकरण अनेक दृष्टियों से मुख्यतया चार वर्गों में किया जा सकता है - मानव वर्ग, पशुपक्षी एवं कीट वर्ग, प्रकृति वर्ग तथा काल्पनिक वर्ग इत्यादि ।

कबीर की काव्यभाषा अप्रस्तुत-विधान की दृष्टि से बड़ी समृद्ध है । कबीर ने अप्रस्तुतों का चयन प्राय: दैनिक जीवन से किया है ; इसीलिए वे बड़े व्यंजक, सशक्त एवं प्रभावशाली हैं ।

भाषा में अप्रस्तुतों के प्रयोग अनेक प्रकार के मिलते हैं । कबीर की काव्यभाषा में उपलब्ध अप्रस्तुतों का विवरण निम्नअंकित है ।

1· क्रिया-रूप में -

क्रिया-रूप में भी अप्रस्तुत-विधान मिलता है;

उदाहरणार्थ ---

कर पकरे अँगुरी गिनें, मन धावे चहुं ओर ।
जाहि फिराया हरि मिले, सो भया काठ की ठौर ।।[1*]

"मन धावे चहुं ओर" में "धावे" क्रिया का मूल रूप है, "जीवों की तरह दौड़ना" । यहां "धावे" क्रिया द्वारा मन की चंचलता प्रदर्शित की गयी है । "धावे" क्रिया में अप्रस्तुत - विधान कार्य कर रहा है ।

2. क्रियाविशेषण- रूप में -

क्रियाविशेषण-रूप में अप्रस्तुत-विधान अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

कबीर गुर गरवा मिला, मिलि गया आटें लौंन ।
जाति पांति कुल सब मिटे, नाउं धरोगे कौन ।।[2*]

कबीर दास कहते हैं कि मुझे ऐसा समर्थ गुरु मिला कि उसने मुझे भगवान से ऐसे मिला दिया जैसे आटे में नमक मिल जाता है ।

यहां कवि ने "आटें", "लौंन" (आटा, नमक) - प्रयुक्तकर रीतिबोधक क्रियाविशेषण का निर्माण किया है, जिससे उनके परस्पर पूरी तरह से मिल जाने की क्रिया हमारे सामने प्रस्तुत होती है ।

यहां "आटें" और "लौंन" अप्रस्तुत का प्रयोग बड़ा ही व्यंजक है ।

1-* क०ग्रं०, सा० 25-7 2-* क०ग्रं०, सा० 4-24

ना गुर मिला न सिख मिला, लालच खेवा डाल ।
दोनों बूड़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव ।।[1*]

उद्धृत छन्द में कवि कहता है कि पत्थर की नाव में चढ़कर अयोग्य गुरु और शिष्य दोनों जलधार में डूब जाते हैं । यहाँ "पाथर की नाव" अप्रस्तुत है । "पाथर" और "नाव" के माध्यम से कवि रीतिबोधक क्रियाविशेषण का निर्माण कर रहा है, जिससे डूबने की क्रिया पूरी तरह सामने प्रतिबिम्बित हो रही है । यहाँ कवि ने इन अप्रस्तुतों का बड़ा ही जीवंत प्रयोग किया है, जो सर्वथा काम्य है ।

3. अलंकार-रूप में -

साहित्य में अलंकार-रूप में अप्रस्तुत-विधान सर्वाधिक मिलता है । विभिन्न सादृश्यमूलक अलंकारों में अप्रस्तुत उपमान-रूप में आता है, जिनका मूलाधार उपमा है ।

कबीर-काव्य में अलंकार-रूप में अप्रस्तुतों की भरमार है । कबीर ने अपनी काव्यभाषा में अनेकानेक अलंकारों का प्रयोग किया है- रूपक, दृष्टान्त, उपमा, रूपकातिशयोक्ति, अन्योक्ति और उदाहरण प्रमुख हैं ; किन्तु रूपक उनका सबसे प्रिय अलंकार है । इनमें प्रयुक्त अप्रस्तुत विधान दैनिक जीवन से लिये गये हैं तथा वे फल-साम्य, गुण-साम्य और क्रिया-साम्य आदि पर आधारित हैं ।

कबीर ने अपने रूपकों द्वारा ग्राम्यजीवन का बड़ा ही जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया है ।

1-* क०ग्रं०, सा० 1-17

रूपक-

रूपक-रूप में अप्रस्तुत-विधान का प्रयोग द्रष्टव्य है-

काया देवल मन धजा, बिषै लहरि फहराइ ।
मन चाले देवल चलै, ताका सरबस जाइ ।। 1*

प्रस्तुत छन्द में कवि ने देवालय के रूपक द्वारा मन के बारे में बड़ी ही सुन्दर अभिव्यंजना की है, जो अप्रस्तुतविधान द्वारा रूपक के माध्यम से सम्भव हो सका है । कवि ने शरीर को देवालय, मन को पताका और विषय को वायु का रूपक प्रदान किया है । यहाँ "देवल" और "धजा" अप्रस्तुतों का प्रयोग किया गया है ।

कबीरदास कहते हैं कि इस शरीर रूपी देवालय पर मन रूपी ध्वजा, विषयरूपी वायु के संस्पर्श से, लहरा रही है । जिसका शरीर मन के अनुसार विषयों में प्रवृत्त होने लगे, उसका सर्वनाश ही समझिए । भाव यह है कि जिस प्रकार देवालय पर ध्वजा की सर्वोच्च सत्ता होती है, उसी प्रकार मन की शरीर पर, और यह मन शरीर को विषय-वासनाओं में लगाकर सर्वस्व नष्ट कर देता है ।

सुरति ढीकुली लेज लौ, मन नित ढोलनहार ।
कंवल कुवां में प्रेम रस, पीवै बारंबार ।। 2*

"ढीकुली", "लेज", ढोलनहार" और "कुवा" अप्रस्तुत हैं। कवि ने "सुरति" को ढीकुली, "लौ" को रस्सी, "मन" को ढोने का पात्र और "कंवल" को कुवां का रूपक दिया है । यहाँ रूपक की बहुत

1-* क०ग्र०, सा० 29-7

2-* क०ग्र०, सा० 12-6

ही सुन्दर योजना हुई है । यह रूपक लोक-उपादान से लिया गया है, जो कवि के लोकज्ञान का परिचायक है ।

कबीर कहते हैं कि सहस्रार में अमृत-रस भरा हुआ है। साधक अपनी साधना द्वारा सुरति की ढेकुली और लगन की रस्सी से मन की बाल्टी में इस रस को भरकर बार-बार इसका पान करता है ।

तीरथ ब्रत बिख बेलड़ी, सब जग मेल्हा छाइ ।
कबीर मूल निकंदिया, कौन हलाहल खाइ ।।[1*]

कांमिनी काली नागिनीं, तीन्यिउं लोक मंझारि ।
रांम सनेही उब्बरे, बिखई खाए झारि ।। [2*]

काया कजरी बन अहे, मन कुंजर मैंमंत ।
अंकुस ज्ञान रतन है, खेवट बिरला संत ।।[3*]

हरि हीरा जन जौंहरी, ले ले मांड़ी हाटि ।
जब रे मिलेगा पारिखू, तब हीरा की साटि ।। [4*]

कबीर भया है केतकी, भंवर भए सब दास ।
जहं जहं भगति कबीर की, तहं तहं रांम निवास ।।[5*]

पांजल पंजर मन भंवर, अरथ अनूपम बास ।
रांम नांम सींचा अमीं, फल लागा बेसास ।। [6*]

1-* क०ग्रं०, सा० 26-5
2-* क०ग्रं०, सा० 30-2
3-* क०ग्रं०, सा० 29-2
4-* क०ग्रं०, सा० 18-1
5-* क०ग्रं०, सा० 4-8
6-* क०ग्रं०, सा० 32-10

इस तन का दीवा करौं, बाती मेलौं जीव ।
लोही सींचौं तेल ज्यों, तब मुख देखौं पीव ।। [1*]

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जानि ।
दसवां द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछानि ।। [2*]

कबीर मन पंखी भया, उड़ि उड़ि दह दिसि जाइ ।
जो जैसी संगति करे, सो तैसा फल खाइ ।। [3*]

उपर्युक्त छन्दों में "बेलड़ी", "नागिनी", "बन", "कुंजर", "अंकुस", "हीरा", "जोहरी", "केतकी", "भंवर", "पाऊल", "दीवा", "बाती", "तेल", "मथुरा", "द्वारिका", "कासी" और "पंखी" अप्रस्तुत के रूप में आये हैं ।

दृष्टान्त -

कबीर ने अप्रस्तुत-विधान का प्रयोग दृष्टान्त अलंकार के रूप में भी किया है । यथा-

सो साईं तन में बसै, मरम न जानैं तास ।
कस्तूरी का मिरिग ज्यों, फिरि फिरि ढूंढै घास ।।[4*]

कबीर कहते हैं कि परमेश्वर तो शरीर में निवास करता है; किन्तु लोग उसे अज्ञानतावश अन्यत्र खोजते हैं । जिस प्रकार कस्तूरी मृग की नाभि में ही रहती है; किन्तु वह उसे भ्रमवश घास में ढूढ़ता है ।

1-* क०ग्रं०, सा० 2-22
2-* क०ग्रं०, सा० 26-11
3-* क०ग्रं०, सा० 24-3
4-* क०ग्रं०, सा० 7-6

छन्द की अन्तिम पंक्ति अप्रस्तुत रूप में, दृष्टान्त अलंकार के माध्यम से, आयी है । यहाँ कवि का आभिव्यक्तिक सौन्दर्य द्रष्टव्य है ।

यहाँ "कस्तूरी का मिरिग" एवं "घास" अप्रस्तुत हैं ।

उपमा-

परनारी कौ राचनौं, जस लहसुन की खानि ।
कोनैं बैठे खाइए, परगट होइ निदानि ।। [1*]

यहाँ "लहसुन" अप्रस्तुत है । कबीर ने दूसरे की स्त्री से प्रेम को लहसन के खाने के समान बताया है ।

रूपकातिशयोक्ति-

ऐसी नगरिया में केहि बिधि रहनौं ।
नित उठि कलंक लगावे सहना ।।
एकै कुवाँ पाँच पनिहारी ।
एकै लेजु भरैं नौ नारी ।।
फटि गया कुवाँ बिनसि गई बारी ।
बिलग भई पाँचों पनिहारी ।।
कहे कबीर छाड़ि मैं मेरा ।
उठि गया हाकिम लुटि गया डेरा ।। [2*]

उद्धृत छन्द में "नगरिया", "कुवाँ", "पनिहारी", "लेजु", "बारी", और "हाकिम" अप्रस्तुत-रूप में आये हैं ।

1-* क०ग्रं०, सा० 30-1   2-* क०ग्रं०, प० 95

कबीर ने शरीर की नश्वरता का वर्णन करते हुए उसके प्रति ममत्व-भाव को व्यर्थ बताया है । वे कहते हैं कि इस शरीर रूपी नगरी में किस प्रकार रहा जाय ? यह जीव अपने कर्म से नित्य अंतरात्मा को कलंकित करता रहता है । इस शरीर रूपी नगरी में प्राणमय कोषरूपी एक कुआँ है, जिसमें पंच प्राण अथवा पंच ज्ञानेन्द्रियाँ पानी भरने वाली हैं, अर्थात् उससे शक्ति ग्रहण करती हैं । शरीर में मेरुदण्ड रूपी एक ही रस्सी है और नौ नाड़ियाँ उससे अपनी-अपनी शक्ति ग्रहण करती रहती हैं । प्राणमय कोष के जर्जर होने पर स्थूल शरीर रूपी घेरा भी नष्ट हो जाता है और पंच प्राण अथवा पंच ज्ञानेन्द्रियां भी साथ छोड़ देती हैं । कबीर कहते हैं कि मैं और ममत्व का भाव छोड़ो । आत्मा रूपी स्वामी के चले जाने पर शरीर निरर्थक हो जाता है ।

उत्प्रेक्षा-

कबीर तेज अनंत का, मांनों ऊगी सूरिज सेन ।
पति संगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेनि ।।[1*]

उद्धृत छन्द में "सूरिज" अप्रस्तुत है ।

व्यतिरेक-

पांनीं हू तें पातरा, धूवां हू तें झीन ।
पवनां बेगि उतावला, सो दोस्त कबीरे कीन ।।[2*]

प्रस्तुत छन्द में उपमान "पांनीं", "धूवां" और "पवनां" अप्रस्तुत-रूप में आये हैं ।

1-* क०ग्रं०, सा० 9-15

2-* क०ग्रं०, सा० 29-3

अपह्नुति- अंखड़ियां प्रेम कसाइयां, जग जानें दुखड़ियां ।
राम सनेही कारने, रोइ रोइ रातड़ियां ।।1*

उद्धृत छन्द में "दुखड़ियां" अप्रस्तुत है । आंखें प्रेम-विरह के कारण लाल हैं; किन्तु लोग समझते हैं कि आंखें आ गयी हैं [दु:ख रही हैं] । कवि ने अपह्नुति अलंकार के माध्यम से अप्रस्तुत-विधान द्वारा कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति की है ।

उदाहरण -

जालौं इहै बड़ापनौ, ज्यूं सरलै पेड़ खजूरि ।
पंथी छांह न बीसवें, फल लागैं ते दूरि ।।2*

उद्धृत छन्द में प्रथम पंक्ति का परार्द्ध "ज्यूं सरलै पेड़ खजूरि" उदाहरण अलंकार के रूप में आया है । यहां "पेड़ खजूरि" अप्रस्तुत है ।

4• मानवीकरण -रूप में -

पाश्चात्य काव्यशास्त्र का "परसॉनिफिकेशन" हिन्दी में "मानवीकरण" कहलाता है । यह परोक्षत: अपने मूल रूप में अप्रस्तुत-विधान पर आधृत होता है ; क्योंकि अप्रस्तुत के साथ प्रयुक्त क्रिया इसमें वस्तुत: प्रस्तुत के लिए लायी जाती है, जो अप्रस्तुत के साथ किसी न किसी स्तर पर समानता रखती है । उदाहरणार्थ -

कबीर माया डाकिनीं, सब काहू कौं खाइ ।
दांत उपारूं पापिनीं, जे संतां नेड़ी जाइ ।।3*

1-* 1-* क0ग्रं0,सा0 2-23 2-* क0ग्रं0,सा0 22-1
3-* क0ग्रं0, सा0 31-8

प्रस्तुत छन्द में "डाकिनी माया सब काहू कों खाइ" में "खाइ" क्रिया आयी है । यह क्रिया तो जीवों के साथ आती है, जो खाते हैं; किन्तु यहाँ माया के साथ आयी है । यहाँ माया को सजीव प्राणी बना दिया गया है । वस्तुत: इसके मूल में भाव है - "माया जीवों की तरह सब लोगों को खा रही है" या "माया जीवों की तरह खाने का व्यवहार कर रही है"। इस प्रकार मानवीकरण भी अप्रस्तुत-विधान का ही एक रूप है ।

यहाँ माया के साथ प्रयुक्त होने वाली क्रिया "खाइ" प्रस्तुत माया के साथ प्रयुक्त है । माया इस क्रिया का कर्ता बनकर सजीव प्राणियों जैसा व्यवहार कर रही है । इसमें माया की भयंकरता व्यक्त करने के लिए कवि ने "माया जीवों की तरह सबको खाने लगी" का भाव "जीवों की तरह" अप्रस्तुत का लोप करके व्यक्त कर रहा है।

5. <u>अन्योक्ति-रूप में -</u>

माली आवत देखि के, कलियाँ करें पुकार ।
फूली फूली चुनि गईं, काल्हि हमारी बार ।।[1*]

उद्धृत छन्द में दो अर्थ दो स्तरों पर निकलते हैं - एक अप्रस्तुतार्थ और दूसरा प्रस्तुतार्थ ।

अप्रस्तुतार्थ - माली को आते हुए देखकर कलियाँ पुकार कर कहती हैं कि जो खिली थीं उनको वह लेकर चला गया ; परन्तु कल हम लोगों की भी बारी आयेगी । छन्द में "कली" और "माली" अप्रस्तुत हैं ।

1-* क0ग्रं0, सा0 16-34

प्रस्तुतार्थ - जीवात्मा कहती है कि काल वृद्ध लोगों को ले गया । अब कुछ दिनों में हमारी भी बारी आयेगी । कबीर जीवों को सचेत करते हैं कि शरीर नश्वर है, तुम आत्मा के रहते हुए प्रभु-भक्ति कर लो ।

बड़ी विचित्र बात है कि छन्द में प्रयोग केवल अप्रस्तुत का है तथा प्रस्तुत की अभिव्यक्ति संरचना के आंतरिक स्तर में निहित है, जिसका पता पाठक को स्वयं लगाना पड़ता है ।

अभिव्यक्ति के स्तर पर छन्द बड़ा ही सशक्त है ।

6· प्रतीक-रूप में -

मनुष्य कुछ निश्चित सम्बन्धों को प्रदर्शित करने के लिए प्रतीकों का सहारा लेता है । साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग सादृश्य के आधार पर ही किया जाता है । सभी प्रतीक अप्रस्तुत-रूप में आते हैं । उदाहरणार्थ -ज्ञान के लिए "प्रकाश" अज्ञान के लिए अंधकार, आत्मा के लिए "दुल्हन" ब्रह्म के लिए "पुरुष" सांसारिक जीव के लिए "कौवा" ज्ञानी आत्मा के लिए "हंस"; ये सभी अप्रस्तुत हैं, जो आन्तरिकत: या बाह्यत: सादृश्य के आधार पर लाये गये हैं ।

कबीर-काव्य अनेकानेक प्रतीकों से सम्पन्न है ;

उदाहरणार्थ -

टट्टा बिकट बाट घट मांहीं । खोलि कपाट महल जब जाहीं ।
रहे लपटि घट परचौ पावा । देखि अटल टलि कतहुं न जावा ।1*

1-* क०ग्रं०, र0 16

उद्धृत छन्द में "घट" शरीर के प्रतीक-रूप में, "महल" चेतन के प्रतीक-रूप में आये हैं । ये दोनों प्रतीक अप्रस्तुत हैं ।

कबीर कहते हैं कि परमात्मा तक पहुँचने का निकट मार्ग शरीर में ही है । जीव जब अपने अज्ञान के कपाट को खोलकर चेतन के महल में पहुँच जाता है, तब वहाँ आत्मा और परमात्मा संयुक्त होकर वास करते हैं । इस प्रकार ब्रह्म में जीव अटल हो जाता है और फिर उसका ध्यान अन्यत्र नहीं जाता ।

नाँ परतीति न प्रेम रस, नाँ इस तन में ढंग ।
क्या जानौं उस पीव सौं, कैसे रहसी रंग ।। 1*

उद्धृत छन्द में कबीर ने दाम्पत्य प्रतीक के माध्यम से अप्रस्तुत-विधान द्वारा कथ्य को बड़े ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है । यहाँ कवि ने श्रृंगारिक वातावरण की सृष्टि की है ; किन्तु उसके इस श्रृंगार-योजना को वासना की गंध तक छू नहीं पाती । कवि ने दाम्पत्य जीवन का कितना सही चित्रण प्रस्तुत किया है ।

वास्तव में मुग्धा नववधू इस बात से आशंकित रहती है कि न जाने प्रिय से प्रथम मिलन में उसकी क्या गति होगी ? इस छन्द का आध्यात्मिक अर्थ भी उतना ही मार्मिक है । जीव इस आशंका से भयभीत है कि उसमें प्रभु के प्रति न तो प्रेम है और न ही उसे प्रभु के साथ व्यवहार का ढंग ही मालूम है, न जाने प्रभु-मिलन में उसकी क्या गति होगी ?

इस छन्द में "पीव" शब्द परमात्मा के प्रतीक-रूप में अप्रस्तुत के लिए आया है ।

1-* कoग्रं०, सा० 6-9

कैसें नगर करौं कुटकारी ।

मांसु पसारि गीध रखवारी ।।

बैल बियाइ गाइ भई बांझ । बछरहिं दूहै तीनिउं सांझ ।।

मूसा खेवट नाव बिलइया । सोवै दादुर सर्प पहरिया ।।

नित उठि स्यार सिंघ सौं जूझै । कहै कबीर कोइ बिरला बूझै ।।[1*]

प्रस्तुत पद उलटबाँसी से सम्बन्धित है । इसमें लोकाचार के विरुद्ध बात कही गयी है । यह उलटबाँसी प्रतीकमूलक है, जो अप्रस्तुत-विधान पर आधारित है ।

उद्धृत छन्द में "नगर" शरीर के प्रतीक-रूप में, "मांसु" विषय के प्रतीक-रूप में, "गीध" लोभ के प्रतीक-रूप में, "बैल" अविवेक के प्रतीक-रूप में, "बछरहि" इन्द्रियों के प्रतीक-रूप में, "चूहा" काम के प्रतीक-रूप में, "बिलइया" प्रज्ञा के प्रतीक-रूप में, "दादुर" मोह, अविद्या के प्रतीक-रूप में, "सर्प" शास्त्रीय ज्ञान के प्रतीक-रूप में, "स्यार" तृष्णा के प्रतीक-रूप में और "सिंघ" जीव के प्रतीक-रूप में आये हैं । ये सभी प्रतीक अप्रस्तुत हैं ।

प्रस्तुत छन्द में कबीर ने मानव-जीवन की विडम्बना के बारे में वर्णन करते हुए कहा है कि मनुष्य की दुर्बलताओं के विनाशकारी तत्व ही उसके अपने बने हुए हैं । बिना इसके रहस्य को समझे मानव का कल्याण नहीं है ।

ऊपर से यह छन्द अटपटा सा लगता है ; किन्तु प्रतीकों का अर्थ लेने पर अपनी आंतरिक संगति में ठीक बैठता है, कोई - विसंगति प्रतीत नहीं होती है ।

1-* कoग्रo, पo 120

कबीर कहते हैं कि मैं (जीव) इस शरीर रूपी नगर की रक्षा कैसे करूं ? यहां विचित्र स्थिति है । विषय रूपी मांस फैला हुआ है और उसकी रक्षा करने वाला लोभ रूपी गीध, जिससे मनुष्य विषय में अनुरक्त रहता है । यहां अविवेक रूपी बैल से ही सभी कार्य सम्पादित होते हैं और विवेक रूपी गाय कुछ करने में असमर्थ है । इन्द्रिय रूपी बछड़ों का सदा दोहन होता है अर्थात् इन्द्रियां सदैव विषय- रस का पान करती रहती हैं । काम रूपी मूस प्रज्ञा रूपी नाव को बहा ले जाता है । मोह रूपी मेढक सो रहा है और शास्त्रीय ज्ञान रूपी सर्प उसकी रक्षा कर रहा है । यहां शास्त्रीय ज्ञान मोह की रक्षा करता है अर्थात् शास्त्रज्ञान द्वारा मोह को सहारा मिलता रहता है । तृष्णा रूपी सियार प्रतिदिन जीव रूपी सिंह से युद्ध करता रहता है । कबीर कहते हैं कि इस विचित्र रहस्य को कोई बिरला ही जानता है ।

7· मुहावरे-रूप में -

मुहावरे के रूप में भी अप्रस्तुत का प्रयोग होता है ।

यथा-

डोंइन डारे सुनहां डोरे सिंघ रहे बन घेरे । 1*

प्रस्तुत छन्द में "डोरे डारे" (डोरे डालना) मुहावरा है। कवि ने मुहावरा के प्रयोग द्वारा बड़ी सुन्दर अभिव्यंजना की है ।

माया विविध विधि से जीवों पर डोरे डालती है अर्थात् उन्हें अपने जाल में फंसाना चाहती है या वश में करना चाहती है ।

1-* क0ग्रं0, प0 138

डोरे डारे {डोरे डालना} = फन्द की तरह डोरा डालकर फँसाना ।

वस्तुतः मुहावरे के रूप में भी अप्रस्तुत-विधान कार्य करता है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर का काव्य अप्रस्तुत-विधान की दृष्टि से समृद्ध है । कबीर ने अपने काव्य में अप्रस्तुतों का सर्जनात्मक प्रयोग किया है ; कहीं भी कोई प्रयोग बाहर से चिपकाया हुआ अनावश्यक प्रतीत नहीं होता । उन्होंने अप्रस्तुतों का प्रयोग अर्थ की प्रभावोत्पादकता, भाव और भाषा-सौन्दर्य के लिए किया है ।

--*--

0
000
00000
000
0

** ** **

अध्याय-6

*
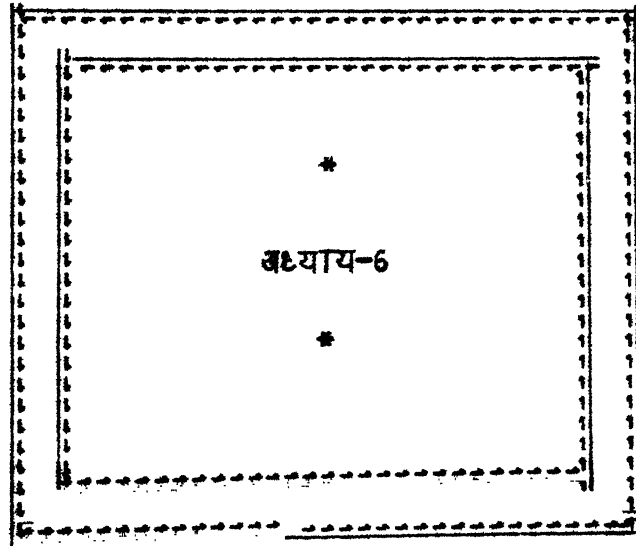
कबीर-काव्य में समानांतरता

***

समानांतरता

समानांतरता शब्द पश्चिमी शैलीवैज्ञानिक साहित्य में प्रयुक्त शब्द " Parallelism " का हिन्दी रूपान्तर है । सामान्य भाषा केवल सामान्य अनुभवों को वहन करती है तो काव्य-भाषा विशिष्ट । काव्यभाषा इन विशिष्ट अनुभवों को वहन करते समय सामान्य भाषा में उपलब्ध भाषा के सामान्य उपादानों से अधिकाधिक बचना चाहती है और संकल्पना के सहारे भाषा के हर संभावित स्तर पर नये उपादानों का संधान करती है । इन विभिन्न उपादानों में समानांतरता भी एक है, जो सामान्य को विशिष्ट भाषा बनाती है । यह समानांतरता संरचना के धरातल पर पुनरा-वृत्ति को अपना आधार बनाती है, साथ ही समतुल्यता की अवधारणा को भी । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि समानांतरता किसी संरचना में समान या विरोधी भाषिक इकाइयों का समानांतर प्रयोग करती है । इसमें समान भाषिक इकाई का एक या अधिक बार अथवा दो या अधिक विरोधी भाषिक इकाइयों का प्रयोग होता है । इनमें परस्पर समान या विरोधी संतुलन उत्पन्न होता है और इस संतुलन के पीछे समानांतरता ही कार्य करती है ।

इस प्रकार समानांतरता को दो परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है - 1. समानता- असमानता के आधार पर 2. भाषिक - इकाइयों के आधार पर ।

1. समानता-असमानता के आधार पर -

भाषिक इकाइयों की समानता-असमानता के आधार पर मुख्य रूप से दो भेद किये जा सकते हैं --

क- समतामूलक समानांतरता ख- विरोधमूलक समानांतरता ।

क- समतामूलक समानांतरता -

जिसमें समान भाषिक इकाइयाँ साथ-साथ प्रयुक्त हों, उसे समतामूलक समानांतरता कहते हैं ।

ख- विरोधमूलक समानांतरता-

जिसमें विरोधी भाषिक इकाइयाँ साथ-साथ हों, उसे विरोधमूलक समानांतरता कहते हैं ।

2. भाषिक इकाइयों के आधार पर -

भाषिक इकाइयों के आधार पर मुख्य रूप से छः भेद किये जा सकते हैं :-

1- ध्वनीय समानांतरता
2- शब्दीय समानांतरता
3- रूपीय समानांतरता
4- वाक्यस्तरीय समानांतरता
5- अर्थीय समानांतरता
6- प्रोक्तिस्तरीय समानांतरता

2.1. ध्वनीय समानांतरता-

"ध्वनीय समानांतरता" से तात्पर्य है -समान ध्वनियों की बार-बार आवृत्ति । ध्वनियों की बार-बार आवृत्ति से काव्य में संगीतात्मकता उत्पन्न होती है । संगीतात्मकता काव्य की बहुत बड़ी विशेषता है ।

भारतीय काव्यशास्त्र में अनुप्रास अलंकार के विभिन्न भेद वस्तुतः ध्वनीय समानांतरता ही हैं । ध्वनियों की समानांतरता

के कई भेद किये जा सकते हैं ।--

अ- समध्वनीय,

ब- समध्वनि - अक्षरीय

स- समध्वनि-शब्दीय

द- समध्वनि-रूपीय ।

कबीर-काव्य में ध्वनीय समानांतरता की प्रवृत्ति कम मिलती है । यह प्रवृत्ति रीतिकालीन कवियों में प्रमुख रूप में पायी जाती है ।

कबीर-काव्य में उपलब्ध समानांतरता का विवरण निम्नांकित है ।

§अ§ समध्वनीय समानांतरता-

ध्वनि की समानांतरता   छन्द

§आदि§ "क" कहा कहौं कछु कहत न आवे अम्रित रसन भरी ।[1*]

"ग" गंग गुसाईंनि गहिर गंभीर।जंजीर बांधि करि खरे कबीर।।[2*]

"ज" जुगति जांनि जो जरि बरि रहै।तब जाइ जोति उजारा लहै॥[3*]

"त" तारन तरनु तबे लगि कहिए जब लगि तत्त न जांनां ।[4*]

"थ" थोरे थलि थानक आरंभै।तो बिनहीं थाभह मंदिर थंभै ।।[5*]

1-* कoग्रंo, पo 2

2-* कoग्रंo, पo 24

3-* कoग्रंo, चौंoरo 13

4-* कoग्रंo, पo 54

5-* कoग्रंo, चौंoरo 22

"द" दसवें द्वारि जब कूंची दीजै ।तब दयाल कौ दरसन कीजै ।।[1*]

"न" नन्ना निग्रह सौं नेह करि,निरवारै संदेहू । [2*]

"प" पप्पा अपार पार नहिं पावा ।परम जोति सौं परचौ लावा।।
पांचौं इंद्री निग्रह करई।पाप पुन्नि दोऊ निरवरई ।। [3*]

"ब" बारह बरस बालपन खोयौ बीस बरस कछु तप न कियौ ।[4*]

"भ" जो बाहर सो भीतरि जांनां ।गयौ भेद भूपति पहिचांनां।।[5*]

"म" माया मुई न मन मुआ,मरि मरि गया सरीर । [6*]

"र" रैनाइर बिछोहिया,रहु रे संख म झूरि । [7*]

"ल" सहज पलांन चित के चाबुक लौ की लगाम लगाऊं जी ।[8*]

"स" सतगुर साह संत सौदागर तहं मैं चलि के जाऊं जी । [9*]

(अन्त) "त" तन रत करि मैं मन रति करिहौं पांचउ तत्त बराती ।[10*]

"द" नादी बेदी सबदी मोनीं जंम के पटैं लिखाया ।[11*]

"र" बंदे उपरि मिहरि करौ मेरे सांई ।[12*]

"ह" हरि मरिहै तौ हंमहूं मरिहैं ।हरि न मरै हंम काहे कौ मरिहैं।।[13*]

1-* क०ग्रं०, चौं० र० 23
2-* क०ग्रं०, चौं० र० 10
3-* क०ग्रं०, चौं० र० 26
4-* क०ग्रं०, प० 83
5-* क०ग्रं०, चौं० र० 29
6-* क०ग्रं०, सा० 31-27
7-* क०ग्रं०, सा० 2-6
8-* क०ग्रं०, प० 4
9-* क०ग्रं०, प० 4
10- *क०ग्रं०, प० 5
11-* क०ग्रं०, प० 86
12-* क०ग्रं०, प० 177
13-* क०ग्रं०, प० 106

ब• समध्वनि-अक्षरीय-

आसा एक जु राम की, दूजी आस निरास ।
जैसे सीप समंद में, नहीं स्वाति बिन प्यास ।। [1*]

मोकउं कहा पढ़ावसि आल जाल।मेरी पटिया लिखि देहु स्त्री गोपाल ।। [2*]

राम छांड़ौं तौ मेरे गुरहिं गारि ।मोकउं घालि जारि भावे मारि डारि।। [3*]

उद्धृत छन्दों में "आस","आल" एवं "आरि" की पुनरावृत्ति हुई है ।

स• समध्वनि-शब्दीय- भारतीय काव्यशास्त्र का यमक अलंकार यही है ।

कुल खोएं कुल उब्बरै,कुल राखें कुल जाइ ।
राम निकुल जब मेटिया,सब कुल रहा समाइ ।। [4*]

नौ कछु किया न करहिगी, नौ करनैं जोग सरीर ।
जो कछु किया सु हरि किया, भया कबीर कबीर ।। [5*]

पारस रूपी नांम है, लोह रूप संसार ।
पारस तैं पारस भया, परखि भया टकसार ।। [6*]

1-* कoग्रं०, सा० 11-1
2-* कoग्रं०, प० 26
3-* कoग्रं०, प० 26
4-* कoग्रं०, सा०15-37
5-* कoग्रं०, सा० 8-1
6-* कoग्रं०, सा० 9-41

तीरथि चाले दुइ जनां, चित चंचल मन चोर ।
एको पाप न काटिया;लादा मन दस ओर ।। 1*

उपर्युक्त छन्दों में "कुल", "कबीर", "पारस" एवं "मन" शब्दों की आवृत्ति हुई है ; किन्तु उनके अर्थ अलग-अलग हैं । यमक अलंकार होने के कारण समध्वनि-शब्दीय समानांतरता है ; किन्तु यदि अर्थ भी एक हों तो वहाँ पुनरुक्ति अर्थात् शब्दीय समानांतरता होगी ।

द· समध्वनि-रूपीय-

कबीर का तूं चिंतवे, का तेरे चितें होइ ।
आपन चिंता हरि करे, जो तोहिं चिंति न होइ ।।2*

अगिनि भी जूठी पानी जूठा जूठे बैसि पकाया । 3*

ढढ्ढा ढिग ढूंढहि कत आंना ।ढूढ़त ही ढहि गए परांनां ।।
चढ़ि सुमेर ढूंढ़ि जब आवा ।जिहि गढ़ गढ़ा सु गढ़ महिं पावा ।। 4*

अबरन कौं क्या बरनिए, मोपै बरनि न जाइ ।
अबरन बरनैं बाहिरा, करि करि थका उपाइ ।। 5*

आसा जीवे जग मरे, लोग मरे मरि जांहिं ।
धन संचैं तेई मुए, सो उबरे जे खांहिं ।। 6*

1-* क०ग्रं०, सा० 26-4
2-* क०ग्रं०, सा० 32-1
3-* क०ग्रं०, प० 192
4-* क०ग्रं०, चौ० र० 19
5-* क०ग्रं०, सा० 8-5
6-* क०ग्रं०, सा० 31-12

प्रस्तुत छन्दों में "चितवे", "चितै", "चिंता", "चिति" में समध्वनिरूपता, "जूठी", "जूठा" एवं "जूठे" में समध्वनिरूपता, "ढूंढ़हि", "ढूढ़त", "ढूढ़ि" में समध्वनिरूपता, "बरनिए", "बरनि", "बरनें" में समध्वनिरूपता और "मरे", "मरे", "मरि", "मुए" में समध्वनिरूपता है । अस्तु, यहां समध्वनि-रूपीय समानांतरता है ।

ध्वनियों की पुनरावृत्ति से कबीर-काव्य में संगीतात्मकता उत्पन्न हुई है ।

2·2·शब्दीय समानांतरता-

जहां एक ही शब्द की बार-बार आवृत्ति हो तथा सबके अर्थ भी समान हों तो वहां पुनरुक्ति होगी, जिसे शैलीविज्ञान में "शब्दीय समानांतरता" की संज्ञा दी जाती है ।

एक ही शब्द की बार-बार आवृत्ति से काव्यभाषा में संगीतात्मकता उत्पन्न होती है ; साथ ही उस शब्द द्वारा व्यक्त भाव पर बल प्रदान किया जाता है । कबीर-काव्य में शब्दीय - समानांतरता के उदाहरण निम्नांकित हैं --

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ ।
एके आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होइ ।। 1*

रांम रांम सब कोइ कहे, कहिबे बहुत बिचार ।
सोइ रांम सती कहे, सोइ कोतिगहार ।। 2*

1-* क०ग्रं०, सा० 33-3 2-* क०ग्रं०, सा० 28-1

यह मन फटकि पछोरि ले, सब आया मिटि जाइ ।
पंगुला होइ पिउ पिउ करे, पीछैं काल न खाइ ।। [1*]

संसै खाया सकल जग; संसा किनहु न खद ।
जे बेधे गुरु अषिखराँ, ते संसा चुनि चुनि खद ।। [2*]

काया देवुल मन धजा, बिखे लहरि फहराइ ।
मन चाले देवल चले, ताका सरबस जाइ ।। [3*]

मन गोरख मन गोविंद, मन ही औघड़ होइ ।
जो मन राखै जतन करि, तो आपें करता सोइ ।। [4*]

जद का माई जनमिया, कदे न पाया सुख ।
डारी डारो मैं फिरौं, पातैं पातैं दुख ।। [5*]

हौं चितवत हौं तोहि कौं, तू चितवत कछु और ।
कहै कबीर कैसे बने, एक चित्त दुइ ठौर ।। [6*]

चलन चलन सब कोइ कहैं, मोहि अंदेसा और ।
साहेब सौं परचे नहीं, बैठेंगी किस ठौर ।। [7*]

1-* कoग्रं०, सा० 17-7
2-* कoग्रं०, सा० 1-7
3-* कoग्रं०, सा० 29-7
4-* कoग्रं०, सा० 29-6
5-* कoग्रं०, सा० 6-6
6*- कoग्रं०, सा० 11-6
7-* कoग्रं०, सा० 8-5

खरी कसौटी राम की, खोटा टिके न कोइ ।
राम कसौटी सो टिके, जो जीवत मिरतक होइ ।। [1*]

कबीर सब जग ढूँढिया, बुरा न मिलिया कोइ ।
कबिरा सब काहू बुरा, कबीरे बुरा न कोइ ।। [2*]

माया तजी त क्या भया, जो मान तजा नहिं जाइ ।
मानि बड़े मुनिवर गिले, मान सबनि कौं खाइ ।। [3*]

सहजैं सहजैं सब गए, सुत बित कांमिनि कांम ।
एकमेक होइ मिलि रहा, दास कबीरा रांम ।। [4*]

जब लगि मेरी मेरी करै । तब लगि काजु एक नहिं सरै ।।
जब मेरी मेरी मिटि जाइ । तब प्रभु काज संवारै आइ ।।
जब लगि सिंघ रहै बन माहिं । तब लगि यहु बन फूलै नाहि
उलटि सियार सिंघ कौं खाइ । तब यहु फूलै सभ बनराइ ।।

अँधियारे दीपक चहिये । तब बस्तु अगोचर लहिये ।।
जब बस्तु अगोचर पाई । तब दीपक रह्यो समाई ।।
जो दरसन देखा चहिये । तो दरपन मांजत रहिये ।।
जब दरपन लागै काई । तब दरसन किया न जाई ।।
कहै कबीर मैं जांनी । मैं जांनी मन पतियांनी ।।
पतियांनी जो न पतीजे । तो अंधे कौं का कीजे ।। [6*]

1-* क०ग्रं०, सा० 19-4
2-* क०ग्रं०, सा० 6-4
3-* क०ग्रं०, सा० 31-3
4-* क०ग्रं०, सा० 34-3
5-* क०ग्रं०, प० 71
6-* क०ग्रं०, प० 72

दिनाँ चारि के सुरंग फूल । तेहि लखि भँवरा रह्यौ भूल ।।
बनसपती जब लागे आगि । तब भँवरा कहाँ जैहौ भागि ।।
पुहुप पुरानें गए सूख । तब भँवरहिं लागी अधिक भूख ।।
उड़ि न सकत बल गयौ छूटि । तब भँवरी रोवै सीस कूटि ।।
दह दिसि जोवै मधुपराइ । तब भँवरी ले चली सिर चढ़ाइ ।।[1*]

हँम तौ एक एक करि जाँनाँ ।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग जिन नाहिंन पहिचाँनाँ ।।
एकै पवन एक ही पाँनी एकै जोति समाँनाँ ।
एकै खाक गढ़े सब भाँडे एकै कोंहरा साँनाँ ।। [2*]

घट ही भीतरि बनखंड गिरिवर घट हीं सात समुंदा ।
घट ही भीतरि तारा मंडल घट भीतरि रवि चंदा ।।[3*]

सपै देखि न हरखिबे बिपति देखि नाँ रोइ ।
ज्यौं सपै त्यौं बिपति है करता करै सो होइ ।। [4*]

मेरी मेरी करता जनम गयौ ।
जनम गयौ परि हरि न कह्यौ ।।
बारह बरस बालपन खोयौ बीस बरस कछु तप न कियौ ।
तीस बरस तैं राँम न सुमिरयौ फिरि पछितानाँ बिरिध भयौ ।।[5*]
जल के मज्जनि जे गति होवै नित नित मेंडुक न्हावै ।
जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर फिरि फिरि जोनीं आवै।।
हिरदैं कठोर मरे बनारसि नरक न बाँच्या जाई ।
हरि का दास मरे जो गहमरि तौ सगली सैंन तराई ।। [6*]

1-* क०ग्रं०, प० 75
2-* क०ग्रं०, प० 76
3-* क०ग्रं०, प० 142
4-* क०ग्रं०, प० 82
5-* क०ग्रं०, प० 83
6-* क०ग्रं०, प० 84

बुत पूजि पूजि हिंदू मुए तुरुक मुए हज जाई ।
जटा धारि धारि जोगी मुए तेरी गति किनहुं न पाई ।।
केस लूंचि लूंचि मुए बरतिया इनमें किनहुं न पाई ।
बेद पढ़े पढ़ि पंडित मुए रूप देखि देखि नारी ।। 1*

फक्का बिन्दु फूलों फल होई । ता फल फंक लखे जो कोई ।
दूनीं न परई फंक बिचारै । ता फल फंक सबै तन फारै ।। 2*

मम्मा मन सों काज है । मन साधे सिधि होइ ।
मनहीं मन सों कहै कबीरा । मन सा मिला न कोइ ।।3*

ररा सरस निरस करि जानै । होइ निरस सो रस पहिचानै ।
यहु रस छांड़े बहु रस आवा । बहु रस पीए यहु नहिं भावा ।।4*

बावन(चौंतीस)(?) अखिर जोरे आनि । सका न अखिर एक
-पछानि ।।5*

उपर्युक्त छन्दों में "पढ़ि" एवं " "पंडित" शब्दों की क्रमशः दो बार, "राम" शब्द की तीन बार, "कहै", "सोइ" शब्दों की क्रमशः दो बार, "पिउ" शब्द की दो बार, "सखा" शब्द की तीन बार,

---

1-* क०ग्रं०, प० 85
2-* क०ग्रं०, चौं र० 27
3-* क०ग्रं०, चौं०र० 30
4-* क०ग्रं०, चौं०र० 33
5-* क०ग्रं०, चौं०र० 41

"चुनि" एवं "छंद" शब्दों की क्रमशः दो बार, "देवल" एवं "मन" शब्दों की क्रमशः दो बार, "मन" शब्द को चार बार, "डारी" एवं "पातें " शब्दों की क्रमशः दो बार, "चितवत" शब्द की दो बार, "चलन" शब्द की दो बार, "कसौटी", "रोम" एवं "टिके" शब्दों की क्रमशः दो बार, "सब" एवं "कोइ" शब्दों की क्रमशः दो बार, "बुरा" शब्द की तीन बार, "मौन" शब्द की तीन बार, "सहजैं" शब्द की दो बार, "जब" तथा "लगि", "मेरी", "तब", शब्दों की क्रमशः तीन बार, चार बार तथा "काज", "सिंघ", "बन", "फूले" शब्दों की क्रमशः दो बार, "तब" तथा "दीपक", "बस्तु", "अगोचर", "जब", "दरसन", "दरपन", "मैं", "जौना", "पतियांना" शब्दों की क्रमशः तीन बार, दो बार, "भंवरा", "भंवरी" एवं "तब" शब्दों की क्रमशः दो बार, तीन बार एवं चार बार, "एक" शब्द की सात बार, "घट" शब्द की चार बार, "सपै" एवं "बिपति" शब्दों की क्रमशः दो बार, "मेरी", "जनम", "गयो", "नित", "मेंढ्क", "फिरि", "मरे" एवं "बरस" शब्दों की क्रमशः दो बार, तीन बार, "मुए" शब्द की पाँच बार, "पूजि", "धारि", "पाई", "लूँचि", एवं देखि" शब्दों की क्रमशः दो बार, "फल" एवं "फंक" शब्दों की क्रमशः तीन बार, "मन" शब्द की चार बार, "निरस", "यह", "बह" एवं "रस" शब्दों की क्रमशः दो बार, चार बार और "अविगर" शब्द की दो बार आवृत्ति हुई है ।

इस आवृत्ति से भाषा में संगीतात्मकता उत्पन्न हुई है, साथ ही इससे शब्दों या उनके द्वारा व्यक्त भावों पर बल प्रदान किया गया है । इस शैली-सौन्दर्य की योजना शब्दों की आवृत्ति से ही सम्भव हो सकी है ।

कबीर-काव्य में शब्दीय समानांतरता के कुछ और उदाहरण निम्नांकित हैं -

अंधा[1*] अनंत[2*] कुल[3*] काल[4*] माया[5*] कोटि[6*] असमहि[7*]

गगनां[8*] गरब[9*] गढ़[10*] घट[11*] घर[12*] चित[13*] चिंता[14*]

जल[15*] जननी[16*] जग[17*] जनम[18*] जोति[19*] जूठा[20*] ठग[21*]

1-* क0ग्रं0, सा0 3-24
2-* क0ग्रं0, सा0 1-13
3-* क0ग्रं0, सा0 4-9
4-* क0ग्रं0, प0 128
5-* क0ग्रं0, प0 128
6-* क0ग्रं0, प0 155
7-* क0ग्रं0, चौं0 र0 7

8-* क0ग्रं0, प0 194
9-* क0ग्रं0, र0 7
10-* क0ग्रं0, चौं0र0 19
11-* क0ग्रं0, चौं0र0 16
12-* क0ग्रं0, प0 89
13-* क0ग्रं0, सा0 32-9
14-* क0ग्रं0, सा0 32-9

15-* क0ग्रं0, प0 34
16-* क0ग्रं0, प0 37
17-* क0ग्रं0, प0 53
18-* क0ग्रं0, प0 93
19-* क0ग्रं0, प0 119
20-* क0ग्रं0, प0 192
21-* क0ग्रं0, चौं0 र0 17

1* दुखिया 2* दीपक 3* नगरी 4* नूर 5* नीम 6* निरखत 7* पियास 8* प्रेमीं

9* पवन 10* पढ़त 11* फूला 12* बिसहर 13* बालक 14* बर 15* बाघिनी 16* बिख

17* भ्रमत 18* भरम 19* मुल्ला 20* मालिनीं 21* रबि 22* रीझे 23* सुख 24* संत

1-* क0ग्रं0, प0 90
2-* क0ग्रं0, प0 119
3-* क0ग्रं0, प0 155
4-* क0ग्रं0, प0 185
5-* क0ग्रं0, र0 12
6-* क0ग्रं0, चौ0र0 25
7-* क0ग्रं0, सा0 11-9
8-* क0ग्रं0, सा0 5-10

9-* क0ग्रं0, प0 57
10*- क0ग्रं0, प0 178
11-* क0ग्रं0, प0 93
12-* क0ग्रं0, प0 34
13-* क0ग्रं0, प0 37
14-* क0ग्रं0, प0 110
15*- क0ग्रं0, प0 165
16-* क0ग्रं0, र0 12

17-* क0ग्रं0, प0 154
18-* क0ग्रं0, र0 18
19-* क0ग्रं0, प0 128
20-* क0ग्रं0, प0 187
21-* क0ग्रं0, सा0 2-29
22-* क0ग्रं0, सा0 2-29
23-* क0ग्रं0, र0 12
24-* क0ग्रं0, प0 33

सहज[1] सतगुर[2] हिम[3*] ।

उपर्युक्त सभी शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है । यह प्रवृत्ति कबीर-काव्य में अनेकानेक दिखायी पड़ती है ।

कबीर अपने काव्य में विरोधी शब्दों के द्वारा संतुलन-द्योतक संगीत का निर्माण करते हैं । उनके ऐसे प्रयोग कथ्य या अर्थपक्ष से सम्बद्ध हैं । वे विरोधी शब्दों के संयोजन द्वारा अपने कथ्य को बड़े ही सशक्त रूप में रेखांकित करते हैं । ऐसी समानांतरता विरोधी भाव व्यक्त करने के कारण विरोधमूलक समानांतरता कहलाती है ।
उदाहरणार्थ -

जो उगै सो आथवै, फूलै सो कुम्हिलाइ ।
जो चुनिया सो ढहि पड़े, जामैं सो मरि जाइ ।। [4*]

कबीर एकै जाँनिया, तौ जानी सब जाँण ।
जे वो एक न जाँनिया, तौ सबही जाँग अजाँण ।। [5*]

आया अनआया भया, जे बहु राता संसार । [6*]

1-* क०ग्रं०, सा० 34-2
2-* क०ग्रं०, प० 144
3-* क०ग्रं०, सा० 9-9
4-* क०ग्रं०, सा० 16-19
5-* क०ग्रं०, सा० 11-10
6-* क०ग्रं०, सा० 15-57

कुल खोएं कुल उब्बरै, कुल राखें कुल जाइ ।
राम निकुल जब भेटिया, सब कुल रहा समाइ ।।[1*]

गावन ही में रोज है, रोवन ही में राग ।
इक बैरागी ग्रिह करै, एक ग्रिही बैराग ।।[2*]

कहीं वे दूसरी तरह की विरोधमूलक समानांतरता का प्रयोग करते हैं ; यथा-

मन लागा उनमन्न सौं, उनमनि मनहिं बिलगि ।
लौन बिलगा पानिया, पानीं लौन बिलगि ।। [3*]

उपर्युक्त छन्द में कबीर ने जीव और ब्रह्म के एकाकार की स्थिति का वर्णन नमक और पानी के माध्यम से किया है -"नमक पानी में मिल गया और पानी नमक में" । उन्होंने अपने कथ्य को विरोधमूलक समानांतरता के माध्यम से व्यक्त किया है । विरोधमूलक समानांतरता का कुछ और उदाहरण द्रष्टव्य है :-

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहरि भीतरि पानीं ।
फूटा कुंभ जल जलहिं समानां यहु तत कथौ गियांनीं ।।[4*]

1-* क०ग्रं०, सा० 15-37

2-* क०ग्रं०, सा० 32-13

3-* क०ग्रं०, सा० 9-40

4-* क०ग्रं०, प० 194

2•3• रूपीय (व्याकरणिक) समानांतरता-

कबीर-काव्य में रूपीय समानांतरता के उदाहरण कम प्राप्त होते हैं । फिर भी इन्हें क्रमशः आगे लिया जा रहा है ।

भानन गढ़न संवारन संम्रथ ज्यों राखै त्यों रहिए । [1*]

जो पै रसनां रामु न कहिबो । तो उपजत बिनसत भरमत रहिबो[2]

कबीर सूता क्या करै, उठि किन रोवे दुक्ख ।
जाका बासा गोर में, सो क्यूं सोवै सुक्ख ।।[3*]

जो काटौं तो डहडही, सींचौं तौ कुम्हिलाइ ।
इस गुनवंती बेलि का, कछु गुन बरनि न जाइ ।।[4*]

बसुधा बन बहु भांति है, फूले फले अगाध ।
मिष्ट सुबास कबीर गहि, बिषम गहै नहिं साध ।।[5*]

उद्धृत छन्दों में "भानन", "गढ़न", "संवारन" शब्दों में व्याकरणिक रूप "अन" की समानांतरता, "उपजत", "बिनसत", "भरमत" क्रियाओं में व्यावरणिक रूप "अत" की समानांतरता, "करै", "रोवे", "सोवे" क्रियाओं में व्याकरणिक रूप "ऐ" की समानांतरता,

---

1-* क०ग्रं०, प० 66
2-* क०ग्रं०, प० 78
3-* क०ग्रं०, सा० 3-1
4-* क०ग्रं०, सा० 13-2
5-* क०ग्रं०, सा० 27-5

"काटो", "सींचो" में व्याकरणिक रूप "ओ" की समानांतरता, और "फूले","फूले"गहे" में व्याकरणिक रूप "ऐ" की समानांतरता है । इन व्याकरणिक रूपों की समानांतरता से अभिव्यक्ति में संगीतात्मकता उत्पन्न हुई है ।

2·4· वाक्यस्तरीय समानांतरता-

वाक्यस्तरीय समानांतरता में वाक्यांशों, पदबन्धों और उपवाक्यों का समानांतरता प्रयोग होता है । इससे वाक्य में समान या विरोधी संतुलन उत्पन्न होता है । ऐसे प्रयोग और भी प्रभावशाली हो जाते हैं, जब उनका सम्बन्ध शब्दों के भावों के साथ हो जाता है ।

कबीर की काव्यभाषा वाक्यस्तरीय समानांतरता की दृष्टि से समृद्ध है । उदाहरणार्थ -

> राज करंता राजा जाइगा रूप दिपंतो रांनीं ।
> जोग करंता जोगी जाइगा कथा सुनंता ग्यांनीं ।। 1*

उद्धृत छन्द में दोनों पंक्तियां परस्पर संरचना के स्तर पर समान हैं और इनमें परस्पर संतुलन उत्पन्न हुआ है । यह संतुलन - समानांतरता के कारण ही संभव हो सका है ।

संज्ञा	क्रिया
राज, राजा, रूप, रांनीं	करंता, जाइगा, दिपंती
जोग, जोगी, कथा, ग्यांनीं (संज्ञापद)	करंता, जाइगा, सुनंता

1-* क०ग्रं०, प० 92

उद्धृत छन्द में प्रथम चरण में चार संज्ञा शब्द, तीन क्रियाएँ और द्वितीय चरण में चार संज्ञा शब्द तथा तीन क्रियाएँ आयी हैं। यहाँ समान रचना के वाक्यांशों "राज करंता", "जोग करंता" तथा "रूप दिपंती रांनी", "कथा सुरंता ग्यांनी" का क्रमशः समानांतर प्रयोग है। "राजा जाइगा" और "जोगी जाइगा" वाक्य-खण्ड भी समानांतर रूप में प्रयुक्त हैं। यहाँ, समतामूलक समानांतरता है।

के सेवा करि साध को, के हरि के गुन गाइ। [1*]

खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराइ।
कुटिल बचन साधू सहै, दूजै सहा न जाइ॥ [2*]

कोटि क्रिस्न जहं जोरैं हाथ। कोटि बिस्नु जहं नावैं माथ॥
कोटिक ब्रह्मा पढ़ैं पुरान। कोटि महेस जहं धरैं ध्यान॥
कोटिक सरसती धारैं राग। कोटि इंद्र जहं गगन लाग॥ [3*]

चंदन की कुटकी भली, नां बबूर लखरांव।
साधुन की छपरी भली, नां साकत को बड़गांव॥ [4*]

नागे फिरें जोग जो होई। बन का मिरग मुकुति गया कोई॥
मूंड मुंड़ाएं जो सिधि होई। सरगहिं भेड़ न पहुंची कोई॥ [5*]

1-* क॰ग्रं॰, सा॰ 15-20

2-* क॰ग्रं॰, सा॰ 4-25

3-* क॰ग्रं॰, प॰ 149

4-* क॰ग्रं॰, सा॰ 4-37

5-* क॰ग्रं॰, प॰ 174

उद्धृत छन्दों में प्रथम छन्द के पूर्वार्द्ध एवं परार्द्ध, में परस्पर संरचनात्मक समानता, द्वितीय छन्द के पूर्वार्द्ध में परस्पर संरचनात्मक समानता, तृतीय छन्द के पूर्वार्द्ध, परार्द्ध में क्रमशः संरचनात्मक समानता, चतुर्थ छन्द के पूर्वार्द्ध, परार्द्ध में क्रमशः संरचनात्मक समानता, पंचम छन्द के पूर्वार्द्ध, परार्द्ध में क्रमशः संरचनात्मक समानता वाक्यस्तर की है । यहाँ समतामूलक समानांतरता है ।

घट में औघट पाइया, औघट मांहैं घाट ।
कहै कबीर परचा भया, गुरु दिखाई बाट ।। [1*]

क्या जपु क्या तपु क्या व्रत पूजा ।जाकै रिदै {हिदै} भाव है दूजा ।।
परिहरु लोभ अरु लोकाचारु ।परिहरु कामु क्रोध हंकारु ।। [2*]

जब लगि मेरी मेरी करै । तब लगि काजु एक न सरै ।। [3*]

जो जैसी संगति करै । सो तैसा फल खाइ ।। [4*]

सांच बरोबरि तप नहीं, झूठ बरोबरि पाप ।
जाके हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप ।। [5*]

लालन की ओबरी नहीं, हंसन की नहिं पांति ।
सिंहन के लेंहड़ा नहीं, साधु न चलैं जमाति ।। [6*]

1-* क०ग्रं०, सा० 9-19
2-* क०ग्रं०, प० 77
3-* क०ग्रं०, प० 71
4-* क०ग्रं०, सा० 24-3
5-* क०ग्रं०, सा० 15-16
6-* क०ग्रं०, सा० 4-18

उद्धृत छन्दों में "घट में", "औघट माँहै" में पदबन्धीय समानांतरता, "क्या जपु", "क्या तपु", "क्या व्रत" में वाक्यांशीय समानांतरता, "लोभ", "लोकाचारु", "कामु", "क्रोध", "हंकारु" में समतामूलक समानांतरता; क्योंकि ये सभी शब्द अवगुण वर्ग के हैं । "जब लगि", "तब लगि" में पदबन्धीय समानांतरता, "जो जैसी" "सो तैसा" में पदबंधीय समानांतरता, "साँच बरोबरि" एवं "झूठ बरोबरि" में वाक्यांशीय समानांतरता, और "लालन की", "हंसन की" और "सिंहन के" में पदबंधीय समानांतरता है । "जब लगि मेरी मेरी करै । तब लगि काजु एक न सरै ।।" में विरोध मूलक समानांतरता है और अन्य सभी छन्दों में समता मूलक समानांतरता है ।

2·5· अर्थीय समानांतरता-

काव्य-भाषा में जहाँ अर्थ-स्तर पर समानांतरता मिलती है, वहाँ अर्थीय समानांतरता होती है । यह समानांतरता कई रूपों में मिलती है-प्रथम समानार्थी शब्दों के प्रयोग में, द्वितीय अर्थ की दृष्टि से समवर्गीय शब्दों के प्रयोग में, तथा तृतीय श्लेष के रूप में - जहाँ एकाधिक अर्थ साथ-साथ चलते हैं ।

कबीर-काव्य में अर्थीय समानांतरता के प्रयोग कम मिलते हैं । फिर भी इन पर आगे विचार किया जा रहा है ।

﴾1﴿ समानार्थी शब्दों के प्रयोग में -

जाइ रे दिन ही दिन देहा।करि ले बौरो राम सनेहा ।
राम कहत लज्जा क्यूं कीजे ।पल पल आउ घटै तन छीजे ।।[1*]

1-* कॉग्रं०, प० 98

उद्धृत छन्द में शरीर के पर्याय-रूप में "देह", "तन" दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं ; किन्तु दोनों शब्दों के अपने-अपने स्थान पर बड़े ही सार्थक और सुविचिंतित प्रयोग हैं । देह का धात्वर्थ (दिह + घञ्) "जो स्थूल एवं पुष्ट हो" तथा तनु का धात्वर्थ (तन् + उन) "दुबला-पतला, बारीक", इसीलिए क्षीणकाय स्त्री को "तन्वंगी" कहा जाता है । द्रष्टव्य है कि जहां शरीर के धीरे-धीरे क्षीण होने की बात कही जा रही है, वहां कबीर "देह" का प्रयोग कर रहे हैं और जहां पल-पल में क्षीण होने की बात कही जा रही है, वहां "तन" का प्रयोग कर रहे हैं । यहां एक ही शब्द के विभिन्न पर्याय प्रसंग-भेद से अलग-अलग प्रयुक्त हुए हैं ; जिनके अर्थ में एक प्रकार की समानता है। अस्तु, यहां अर्थीय समानांतरता है ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी लिया जा सकता है ।

हरि जननी मैं बालक तोरा ।
काहे न अवगुन बकसहु मेरा ।।
सुत अपराध करते है केते।जननी के चित रहैं न तेते ।।
कर गहि केश करे जो घाता । तऊ न हेत उतारै माता ।।
कहै कबीर इक बुद्धि बिचारी । बालक दुखी दुखी महतारी ।।[1]

मैं सासुरे पिय गौंहनि आई ।
पूरि सुहाग भयो बिनु दूलह चौके रांड भई संग साई ।।
अपनैं पुरिख कबहूं न देख्यौ सती होत समझी समझाई ।।
कहैं कबीर हौं सर रचि मरिहौं तरौं कंत लै तूर बजाई ।।[2*]

1-* क०ग्रं०, प० 37

2-* क०ग्रं०, प० 109

उद्धृत छन्दों में पुत्र के लिए "बालक" एवं "सुत" तथा मा के लिए "माता", "जननी" एवं "महतारी", पति के लिए "पिय", "साईं", "पुरिख", "कंत" शब्द क्रमशः पर्याय-रूप में आये हैं, किन्तु ये सभी अर्थ-स्तर पर सूक्ष्म भेद रखते हैं। एक ही शब्द के अनेक पर्यायों के आने से अर्थ-स्तर पर समानांतरता आ गयी है। यही शैली-सौन्दर्य का हेतु है।

§2§ अर्थ की दृष्टि से समवर्गीय शब्दों के प्रयोग में -

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप।। 1*

का सुनहा कों सुम्रित सुनाएं।का साकत पहिं हरि गुन गाएं।।
कउवा कहा कपूर चराएं।का बिसहर कों दूध पिआएं।।
अम्रित लै लै नींब सिंचाई।कहै कबीर वाकी बाँनि न जाई।। 2*

प्रस्तुत छन्दों में "दया", "धर्म", "क्षमा", "आप", और "सुम्रित", "हरि", "कपूर", "दूध", "अम्रित" क्रमशः गुण वर्ग के हैं तो "लोभ", "पाप", "क्रोध", "काल", तथा "सुनहा", "साकत", "कउवा", "बिसहर", "नींब" क्रमशः अवगुण वर्ग के हैं। इस प्रकार अर्थ के स्तर पर ये समवर्गीय हैं। यहाँ अर्थीय समानांतरता है।

1-* क०ग्रं०, सा० 15-33

2-*- क०ग्रं०, प० 168

(3) श्लेष के रूप में -

भारतीय काव्यशास्त्र का श्लेष अलंकार यही है । "श्लेष" में चूंकि एकाधिक अर्थ साथ-साथ चलते हैं, इसलिए अर्थ-स्तर पर एक प्रकार की समानांतरता पायी जाती है, जिसे अर्थीय समानांतरता कहते हैं । उदाहरणार्थ -

पाहन क्यौं क्या पूजिए, जो जनमि न देई ज्वाब ।
अंधा नर आसामुखी, यौंही खोवै आब ।। [1*]

छन्द के अंतिम चरण में दो अर्थ समानांतर चल रहे हैं । कबीरदास कहते हैं कि अज्ञानी मनुष्य विभिन्न महत्वाकांक्षाओं के वशीभूत हो मूर्तिपूजाकर व्यर्थ अपने आत्मसम्मान (आब) को नष्ट कर रहा है; अनेक प्रकार की आशाएं लगाए हुए अज्ञानी मनुष्य व्यर्थ ही जल (आब) को पत्थर पर गिराकर बर्बाद करता है ।

प्रस्तुत छन्द में "आब" शब्द में श्लेष है ।

मेरि मिटी मुकता भया, पाया अगम निवास ।
अब मेरे दूजा कोइ नहीं, एक तुम्हारी आस ।। [2*]

उद्धृत छन्द में "मुकता" में श्लेष है । इसके दो अर्थ हैं - मुक्त, मोती की तरह उज्ज्वल और निर्मल । छन्द के प्रथम चरण में श्लेष के कारण दो अर्थ समानांतर चल रहे हैं -ममता के समाप्त होने पर मैं मुक्त हो गया और मुझे ब्रह्म की प्राप्ति हो गयी; ममता के समाप्त होने पर मैं मोती की तरह उज्ज्वल और निर्मल बन गया और मुझे ब्रह्म की प्राप्ति हो गयी ।

1-* क0ग्रं0, सा0 26-8   2-* क0ग्रं0, सा0 32-1।

2·6· प्रोक्तिस्तरीय समानांतरता-

"प्रोक्ति" ﴾डिस्कोर्स﴿ सम्पूर्ण कृति भी हो सकती है या अर्थ की दृष्टि से सुगठित उसका एक अंश भी । प्रोक्ति-स्तर पर समानांतरता ध्वनीय, शब्दीय, रूपीय, वाक्यस्तरीय तथा अर्थीय रूप में प्राप्त होती है ; किन्तु यहाँ प्रोक्तिस्तरीय समानांतरता के - अन्तर्गत विभिन्न वाक्यों में प्राप्त समानांतरता को ही लिया जा रहा है, उदाहरणार्थ :-

केसव के कवला होइ बैठी सिव के भवन भवांनीं ।
पंडा के मूरति होइ बैठी तीरथ हू में पांनीं ।।
जोगी के जोगिनि होइ बैठी राजा के घरि रांनीं ।
काहू के हीरा होइ बैठी काहू के कौड़ी कांनीं ।।
भगतां के भगतिनि होइ बैठी तुरकां के तुरकांनीं । [1*]

प्रस्तुत छन्द में सभी पंक्तियाँ संरचना के स्तर पर समान हैं । अर्थात् यह समानांतरता समतामूलक है । इस प्रकार सभी चरणों का कथ्य समतामूलक समानांतरता की अनुस्यूति से ही प्रभावी हो पाया है । यहाँ प्रोक्ति के स्तर पर समानांतरता होने से प्रोक्ति-स्तरीय समानांतरता है ।

अस बिनु पाखर गज बिनु गुड़िया बिनु षडै संग्रामहि जुड़िया ।।
बीजु बिनु अंकुर पेड़ बिनु तरवर बिनु साखा तरवर फलिया ।
रूप बिनु नारि पहुप बिनु परिमल बिनु नीरै सरवर भरिया ।।
देव बिनु देहुरा पत्र बिनु पूजा बिनु पंखा बिलंबिया ।
दीपक बिनु जोति जोति बिनु दीपक हद बिनु अनाहद सबद बागा ।। [2*]

1-* क०ग्रं०, प० 163
2-* क०ग्रं०, प० 119

इस प्रोक्ति में संरचना के स्तर पर पाँचों पंक्तियों में समानता है तो अर्थ-स्तर पर विरोधमूलक (असम्भाव्यता) समानान्तरता है । इस प्रकार इन चरणों के कथ्य की प्रभावान्विति केवल समतामूलक और विरोधमूलक समानांतरताओं की अनुस्यूति से ही संभव हो पाया है ।

कबीर की काव्यभाषा समानांतरता की दृष्टि से काफी सम्पन्न है । कबीर ने इसे शैली की एक प्रमुख विशेषता के रूप में अपने काव्य में अपनाया है ।

** --*-- **

0
000
0

---------------- ---- ----------------

अध्याय-7

*

कबीर-काव्य

में

ध्वनीय शैलीवैज्ञानिक अध्ययन

***

ध्वनीय शैलीविज्ञान

"ध्वनि" भाषा की लघुतम् इकाई है । ध्वनियों से शब्द, शब्द से पद, पदों से पदबन्ध, उपवाक्य तथा वाक्य बनते हैं । निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ध्वनियाँ वाक्य में धुरी का कार्य करती हैं । काव्यभाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का शैली की दृष्टि से वैज्ञानिक अध्ययन ही ध्वनीय शैलीविज्ञान है। चयन एवं विचलन की दृष्टि से ध्वनियों का अपना महत्व है । हम कह सकते हैं कि ध्वनियों का एक सीमा तक प्रभाव-जनित अर्थ होता है ।

ध्वनियों का प्रभाव-जनित अर्थ

ध्वनियों के प्रभाव-जनित अर्थ से तात्पर्य है -वह अनुभूति जो श्रोता को ध्वनियों को सुनने के उपरान्त होती है ।

ध्वनियों का प्रभाव-जनित अर्थ उनके औच्चारणिक विशेषताओं पर निर्भर करता है, साथ ही वह भाषा विशेष और परम्परा से भी सम्बद्ध होता है ।

ध्वनियों का शुद्ध भाषिक सौन्दर्य की दृष्टि से अपना अलग ही महत्व है । कभी-कभी ध्वनियों के ठीक उच्चारण न होने के कारण सारा ध्वन्यात्मक सौन्दर्य समाप्त हो जाता है । किसी व्यक्ति के ध्वनियों के उच्चारण से हम यह पता लगा सकते हैं कि अमुक व्यक्ति का स्तर क्या है । इससे उसकी उच्चशिक्षा, अल्प शिक्षा, अशिक्षा, देहातीपन, निम्नवर्गता, क्षेत्र विशेष आदि का पता चलता है ।

कबीर की काव्यभाषा में प्रयुक्त ध्वनियों के प्रभाव-जनित अर्थ के अध्ययन के पूर्व स्वर-व्यंजन के औच्चारणिक विशेषताओं व प्रभावों का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है ।

ध्वनियों के उच्चारण की दृष्टि से उन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है -

1- अनवरुद्ध

2- अवरुद्ध ।

जिन ध्वनियों के उच्चारण में वायु-मार्ग में अवरोध नहीं होता, उन्हें अनवरुद्ध कहते हैं । ऐसी ध्वनियों को भाषा -वैज्ञानिक अध्ययन में स्वर की संज्ञा दी जाती है ।

जिन ध्वनियों के उच्चारण में वायु-मार्ग में पूर्ण अवरोध उत्पन्न होता है, उन्हें अवरुद्ध कहते हैं । ऐसी ध्वनियों को भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन में व्यंजन की संज्ञा दी जाती है ।

स्वर, व्यंजन ध्वनियों की औच्चारणिक विशेषताएं अधोलिखित हैं ।

स्वर [1*]

क॰ जीभ का भाग	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ
1॰ अग्र	x	x	✓	✓	x	x	✓	✓	x	x
2॰ मध्य	✓	x	x	x	x	x	x	x	x	x
3॰ पश्च	x	✓	x	x	✓	✓	x	x	✓	✓

1-* डॉ0 भोलानाथ तिवारी- शैलीविज्ञान, पृ0 125

ख• भाग की स्थिति	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ
1• संवृत	x	x	✓	✓	✓	✓	x	x	x	x
2• अर्ध-संवृत	x	x	x	x	x	x	✓	x	✓	x
3• अर्ध-विवृत	x	x	x	x	x	x	x	✓	x	✓
4• विवृत	x	✓	x	x	x	x	x	x	x	x
ग• उच्चारण में लगने वाला समय										
1• ह्रस्व	✓	x	✓	x	✓	x	x	x	x	x
2• दीर्घ	x	✓	x	✓	x	✓	✓	✓	✓	✓
घ• ओष्ठों की स्थिति										
1• वृत्तमुखी	x	x	x	x	✓	✓	x	x	✓	✓
2• अवृत्तमुखी	✓	✓	✓	✓	x	x	✓	✓	x	x
ङ•-उच्चारण-अवयवों की स्थिति										
1• दृढ़	x	✓	x	✓	x	✓	x	x	x	x
2• ईषत् दृढ़	x	x	x	x	x	x	✓	✓	✓	✓
3• शिथिल	✓	x	✓	x	✓	x	x	x	x	x
च• कोमल तालु की स्थिति										
1• मौखिक	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
2• अनुनासिक	x	x	x	x	x	x	x	x	x	x

व्यंजन

घोष-अघोष ध्वनियाँ -

(अ) 1. घोष - ग् घ् ङ् ज् झ् ञ् ड् ढ् ण् द् ध् न् न्ह् ब् भ् म् म्ह् य् र् ल् ल्ह् व् ह् ड़् ढ़् ।

2. अघोष- क् ख् च् छ् ट् ठ् त् थ् प् फ् स् श् ।

अल्पप्राण-महाप्राण ध्वनियाँ

(ब) 1. अल्पप्राण - क् ग् ङ् च् ज् ञ् ट् ड् ण् त् द् न् प् ब् म् य् र् ल् व् ड़् ।

2. महाप्राण - ख् घ् छ् झ् ठ् ढ् थ् ध् न्ह् फ् भ् म्ह् ल्ह् ढ़् ।

स्थान के आधार पर -

इस आधार पर व्यंजन ध्वनियों के निम्नांकित भेद हो सकते हैं ।

1. स्वरयंत्रमुखी- ह् ।
2. कोमलतालव्य- क् ख् ग् घ् ङ् ।
3. मूर्धन्य- ट् ठ् ड् ढ् ण् ड़् ढ़् ।
4. कठोरतालव्य- च् छ् ज् झ् ञ् य् श् ।
5. वर्त्स्य - न् न्ह् र् ल् ल्ह् स् ।
6. दन्त्य- त् थ् द् ध् ।
7. ओष्ठ्य- प् फ् ब् भ् म् म्ह् व् ।

ध्वनियों की कोमलता-कठोरता का क्रम अधोलिखित है ।

स्वर ध्वनियाँ

स्वर व्यंजन की अपेक्षा अधिक कोमल होते हैं ; किन्तु इनमें भी कुछ अधिक कोमल और कुछ कम कोमल होते हैं । इस दृष्टि से इन्हें चार भागों में बाँटा जा सकता है ।

1· कोमलतम ध्वनि - अ, इ, उ ।
2· कोमलतर ध्वनि - ओ, ए, औ, ऐ ।
3· कोमल ध्वनि- ऊ, ई ।
4· किंचित परुष ध्वनि- आ ।

व्यंजन ध्वनियाँ

व्यंजन ध्वनियाँ स्वरों की अपेक्षा अधिक कठोर होती हैं । व्यंजन ध्वनियों की कोमलता-कठोरता का वर्गीकरण निम्न-अंकित आधार पर किया जा सकता है ।

1· कोमलतम ध्वनियाँ - य् व् र् ल् स् ह् न् ङ् ञ् म् श् ष् ।
2· कोमलतर ध्वनियाँ - क् च् त् प् ग् ज् द् ब् ।
3· कठोरतर ध्वनियाँ - ख् छ् थ् फ् घ् झ् ध् भ् ।
4· कठोरतम ध्वनियाँ - ण् ड़् ढ़् ट ढ ठ ड ।

महाप्राण, द्वित्व एवं ट वर्गीय व्यंजनों से भीषणता, अघोष, अल्पप्राण व्यंजनों द्वारा स्वच्छता, तरलता, अघोष ध्वनियों की अपेक्षा घोष ध्वनियों द्वारा भारीपन, विवृत, दीर्घ स्वर, एवं महाप्राण व्यंजन द्वारा बड़े का भाव, संवृत और अर्धसंवृत स्वर द्वारा

उँचापन, अग्र स्वर द्वारा नीचापन की व्यंजना होती है । घोष ध्वनियाँ अघोष की अपेक्षा अधिक संगीतात्मक होती हैं ।

व्यंजन ध्वनियों में सर्वाधिक तरलता र, ल में होती हैं ; क्योंकि ये स्वर-व्यंजन के मध्य स्थित हैं । य, व ध्वनियाँ भी इसी प्रकार की हैं ; किन्तु इनमें र, ल जैसी तरलता नहीं है ।

ह्रस्व स्वरों से चंचलता, अशांति तथा दीर्घ स्वरों से अचंचलता, शांति, गाम्भीर्य, अघोष अल्पप्राण की तुलना में सघोष अल्पप्राण एवं महाप्राण से भारी भरकमता व्यक्त होती है ।

स्वर सर्वाधिक पारदर्शी होते हैं । इनके उच्चारण में वायु-मार्ग में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं होता है । स्पर्श व्यंजन सर्वाधिक अपारदर्शी होते हैं ; क्योंकि इनके उच्चारण में वायु-मार्ग में पूर्ण व्यवधान उपस्थित होता है ।

हिन्दी में ध्वनियाँ प्रायः उपर्युक्त अर्थों में प्रयुक्त होती हैं ; किन्तु कभी-कभी अन्य भाव भी इनके द्वारा व्यंजित होते हैं ।

<u>कबीर की काव्यभाषा में ध्वनि-चयन तथा उनका प्रभाव-जनित अर्थ -</u>

काव्यभाषा में तत्वतः ध्वनियों का चयन नहीं होता है, अपितु ध्वनि के प्रभाव तथा विशिष्ट भावों से उनके सम्बद्ध होने के के आधार पर विशिष्ट ध्वनियुक्त शब्दों का चयन होता है । केवल इसी अर्थ में यहाँ ध्वनि-चयन की बात की जा सकती है । कबीर-काव्य में प्रयुक्त समस्त ध्वनियों का चयन की दृष्टि से अध्ययन एवं उनके प्रभाव-जनित अर्थ की व्याख्या करना अपने आप में असंभव तो

नहीं, किन्तु दुष्कर कार्य अवश्य होगा । अस्तु, यहाँ हम उनके कुछ छन्द, जो विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हैं, का ध्वनि-चयन की दृष्टि से अध्ययन करेंगे ।

हरि जननी मैं बालक तोरा ।
काहे न अवगुन बकसहु मेरा ।।
सुत अपराध करत है केते । जननी के चित रहैं न तेते ।।
कर गहि केस करे जो घाता । तऊ न हेत उतारे माता ।।
कहे कबीर इक बुद्धि बिचारी । बालक दुखी दुखी महतारी ।। [1*]

उपर्युक्त छन्द में "बुद्धि" के संयुक्त व्यंजन को छोड़कर शेष सभी शब्दों में व्यंजन मूल रूप में प्रयुक्त हैं ।

कुल स्वर 91 हैं, जिनमें 53 ह्रस्व और 38 दीर्घ स्वर हैं । यदि "काहे", "मेरा", "केते", "तेते", "केस", "हेत" में "ए" अर्द्ध दीर्घ को निकाल दिया जाय तो दीर्घ स्वर 30 ही शेष बचेंगे । इस प्रकार 61 ह्रस्व व 30 दीर्घ स्वर हुए । ह्रस्व स्वरों की अधिकता से छन्द की कोमलता में वृद्धि हुई है ।

छन्द में प्रयुक्त व्यंजन ध्वनियों का अध्ययन निम्नांकित है :-

1· कोमलतम ध्वनियाँ - [वि=1 र=12 ल=2 स=3 ह=9 न=8
म=4] = 39बार

2· कोमलतर ध्वनियाँ- [क=13, च=2 त=13 प=1 ग=2
ज=3 द=3 ब=6] = 43बार

3· कठोरतर ध्वनियाँ- [ख=2 घ=1 ध=2] =5 बार

4· कठोरतम ध्वनियाँ - 0 =0बार

1-* कग्रं0, पृ0 37

ध्वनिगत प्रतिशत

1·	कोमलतम ध्वनियाँ	=	44·8
2·	कोमलतर ध्वनियाँ	=	49·4
3·	कठोरतर ध्वनियाँ	=	5·8
4·	कठोरतम ध्वनियाँ	=	0

"क", "त" स्पर्शी अल्पप्राण ध्वनियों के प्रयोगाधिक्य से स्वच्छता, तरलता एवं कोमलता में अभिवृद्धि हुई है, साथ ही "र" ध्वनि के प्रयोगाधिक्य से तरलता बढ़ी है । "ह" घोष स्पर्शी तथा "न" नासिक्य व्यंजन के प्रयोग से संगीतात्मकता में वृद्धि हुई है ।

कबीर प्रस्तुत छन्द में प्रभु को माता के रूप में तथा स्वयं को बालक के रूप में निरूपित करते हुए उनके सामने विनयानत होकर करुण याचना कर रहे हैं ।

माँ की बालक के प्रति जो वत्सलता होती है, उसे कबीर ने ध्वनियों के माध्यम से उजागर किया है ; जिससे छन्द में तरलता, संगीतात्मकता एवं स्वच्छता की धार सी बह पड़ी है ।

कबीर रेख सिंदूर की,काजर दिया न जाइ ।
नैंननि प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाइ ।। 1*

प्रस्तुत छन्द में कबीर ने दाम्पत्य प्रतीक के माध्यम से भगवान के प्रति अपने अनन्य भाव को व्यक्त किया है । दाम्पत्य प्रतीक के कारण छन्द में श्रृंगारिक वातावरण की सृष्टि हुई है । कवि ने उसके अनुकूल ही कोमल ध्वनियों का चयन किया है ।

1-* क०ग्रं०, सा० 11-13

स्वरों की दृष्टि से कुल संख्या 34 है । जिसमें अ=14 बार, आ=7 बार, इ=6 बार, ई=3 बार, उ=2 बार, ए=1 बार और ऐ=1 बार प्रयुक्त हुए हैं । इनका प्रायोगिक प्रतिशत निम्नांकित है ।

1. कोमलतम ध्वनियाँ	=	58.8
2. कोमलतर ध्वनियाँ	=	5.9
3. कोमल ध्वनि	=	14.7
4. किंचित परुष ध्वनि	=	20.6

श्रृंगारयुक्त भावों को व्यक्त करने के लिए कोमल स्वरों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है ।

इसी परिप्रेक्ष्य में व्यंजन ध्वनियों का अध्ययन भी अनिवार्य है ।

1. कोमलतम ध्वनि-	(य=1 र=7 स=2 ह=3 न=4 म=2)	=19बार
2. कोमलतर ध्वनि-	(क=4 त=1 प=1 ज=3 द=3 ब=1)	=13बार
3. कठोरतर ध्वनि-	(छ=1)	= 1बार
4. कठोरतम ध्वनि-	(0)	=00बार

प्रायोगिक प्रतिशत निम्नवत् है -

1.	कोमलतम ध्वनि	=	57.6
2.	कोमलतर ध्वनि	=	39.4
3.	कठोरतर ध्वनि	=	3.0
4.	कठोरतम ध्वनि	=	0

व्यंजन ध्वनियों में कोमल ध्वनियों के प्रतिशत का प्राधान्य है, कठोर ध्वनियों का प्रतिशत नगण्य है ।

इस छन्द में घोष अल्पप्राण ध्वनियों के प्रयोग से गांभीर्य, उदात्तता एवं संगीतात्मकता व्यंजित हो रही है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर के भक्तिपरक छन्दों में सर्वत्र कोमल ध्वनियों का चयन किया गया है ।

जियरा जाहुगे हम जांनीं ।
आवैगी कोई लहरि लोभ की बूड़ैगा बिनु पांनीं ।।
राज करंता राजा जाइगा रूप दिपंती रांनीं ।
जोग करंता जोगी जाइगा कथा सुनंता ग्यांनीं ।।
चंद जाइगा सूर जाइगा जाइगा पवन अरु पांनीं ।
कहै कबीर तेरा संत न जाइगा रांम भगति ठहरांनीं ।। 1*

उद्धृत छन्द में कबीर ने जीव को चेतावनी देते हुए तृष्णा की भयंकरता का वर्णन किया है ।

इस छन्द में ध्वनि-चयन का औचित्य द्रष्टव्य है -

1. कोमलतम ध्वनि- (य=2 व=2 र=13 ल=2 स=3 ह=5 न=10 म=2) =39बार

2. कोमलतर ध्वनि- (क=7 च=1 त=7 प=5 ग=13 ज=13 द=2 ब=3) =51बार

3. कठोरतर ध्वनि- (थ=1 भ=2) =3बार

4. कठोरतम ध्वनि- (ड़=1 ठ=1) =2बार

1-* क0ग्रं0, प0 92

ध्वनिगत प्रतिशत

1·	कोमलतम् ध्वनि	=	41·1
2·	कोमलतर ध्वनि	=	53·6
3·	कठोरतर ध्वनि	=	3·2
4·	कठोरतम् ध्वनि	=	2·1

उद्धृत छन्द में कोमल ध्वनियों की प्रधानता है । कठोर ध्वनियाँ लगभग नगण्य हैं, जिससे छन्द में कोमलता एवं संगीतात्मकता उत्पन्न हुई है । घोष अल्पप्राण तथा अघोष अल्पप्राण ध्वनियों से छन्द मेंगाम्भीर्य, स्वच्छता, तरलता एवं कोमलता उत्पन्न हुई है । उपदेश विषयक छन्दों में कबीर का गांभीर्य घोष ध्वनियों से मुखर हो रहा है ।

संतो भाई आई ग्यान की आँधी रे ।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी माया रहै न बाँधी रे ।।
दुचिते की दोइ थूनि गिरानीं मोह बलेंडा टूटा ।
त्रिसनां छानि परी धर ऊपरि दुरमति भांडा फूटा ।।
आँधी पाछैं जो जल बरसे तिहिं तेरा जन भींनां ।
कहै कबीर मन भया प्रगासा उदै भानु जब चीनां {न्हो ए} ।।[1*]

प्रस्तुत छन्द में कबीर ने छप्पय, आँधी और वर्षा के रूपक द्वारा यह स्पष्ट किया है कि अज्ञान का आवरण हटने पर ही ज्ञान का प्रकाश होता है ।

प्रस्तुत छन्द में कुल 106 स्वर हैं, जिनमें 46 ह्रस्व एवं 60 दीर्घ स्वर हैं । दीर्घ स्वरों की अधिकता से कवि ने आँधी की विशालता का भाव ध्वनियों के माध्यम से व्यक्त किया है ।

1-* कoग्रंo, पo 52

व्यंजन ध्वनियों का अध्ययन निम्नवत् है -

1· कोमलतम् ध्वनि- {य=3 र=14 ल=2 स=5 ह=4 न=12 म=5} =45बार
2· कोमलतर ध्वनि- {क=5 च=2 त=6 प=4 ग=3 ज=4 द=4 ब=5} =33बार
3· कठोरतर ध्वनि- {छ=2 थ=1 फ=1 घ=1 ध=3 भ=7} =15बार
4· कठोरतम् ध्वनि- {ड़=1 ट=5 ड=2} =8बार

ध्वनिगत प्रतिशत

1· कोमलतम् ध्वनि	=	44·6
2· कोमलतर ध्वनि	=	32·7
3· कठोरतर ध्वनि	=	14·8
4· कठोरतम् ध्वनि	=	7·9

आँधी दूसरी वस्तुओं को अपने प्रभाव से कंपित कर देती है । इस अर्थ की मुखरता कवि ने "र" प्रकंपित ध्वनि को सर्वाधिक आवृत्ति द्वारा की है । "आँधी" में "ध" ध्वनि महाप्राण है, "आ" विवृत एवं दीर्घ ध्वनि है । "ध" ध्वनि की महाप्राणता द्वारा कवि ने आँधी की भयंकरता तथा "आ" ध्वनि से विस्तृतता, फैलाव व्यंजित कर "आँधी" के भाव को "आ" एवं "ध" ध्वनियों के माध्यम से मुखर बनाया है ।

कबीर की नाद-योजना बड़ी मार्मिक है । कवि ने 22·7 प्रतिशत कठोर ध्वनियों का प्रयोग आँधी की भयंकरता द्योतित करने के लिए किया है, जो सर्वथोचित है ।

छन्द में कोमल ध्वनियों का प्राधान्य होने के कारण छन्द गेय हो गया है ।

कबीर ने उपर्युक्त छन्द में ध्वनियों का सम्बन्ध भावों से करके उनके शैली-सौन्दर्य को उजागर किया है ।

जौ पै करता बरन विचारै ।
तौ जनतैं तीनि डाँड़ि किन सारै ।।
जे तूं बाभन बभनीं जाया ।तौ आँन बाट होइ काहे न आया ।।
जे तूं तुरक तुरकिनीं जाया।तौ भीतरि खतनाँ क्यूं न कराया ।।
कहै कबीर मद्धिम नहिं कोइ ।सो मद्धिम जा मुखि राम न होइ ।।[1*]

प्रस्तुत छन्द में कबीर ने वर्ण-व्यवस्था पर बड़ा तीखा व्यंग्य किया है । वे कहते हैं कि जन्म से कोई व्यक्ति श्रेष्ठ नहीं होता, न ही उसकी कोई जाति होती है । वही मनुष्य नीच है जो राम का भक्त नहीं है ।

छन्द में प्रयुक्त ध्वनियों का विवेचन अधोलिखित है -

1• कोमलतम ध्वनि- (य=5 र=10 स=2 ह=5 न=13 म=6) =41बार
2• कोमलतर ध्वनि- (क=10 च=1 त=12 प=1 ज=7 द=2 ब=6) =39बार
3• कठोरतर ध्वनि- (ख=2 ध=2 भ=3) =7बार
4• कठोरतम ध्वनि- (ड़=1 ट=1 ड=1) =3बार

ध्वनिगत प्रतिशत

1• कोमलतम ध्वनि	=	45•6
2• कोमलतर ध्वनि	=	43•3
3• कठोरतर ध्वनि	=	7•8
4• कठोरतम ध्वनि	=	3•3

1-* क0ग्रं0, प0 182

प्रस्तुत छन्द में कोमल ध्वनियाँ 88•9 प्रतिशत तथा कठोर ध्वनियाँ 11•1 प्रतिशत प्रयुक्त हैं। स्पष्ट है कि इन कोमल ध्वनियों की अधिकता से छन्द की गेयता में अभिवृद्धि हुई है। "बाभन" एवं "बभनी" शब्दों में कवि ने ध्वनियों के संयोजन द्वारा हेयार्थ व्यक्त किया है तथा ब्राह्मण के प्रति तिरस्कारपूर्ण भाव व्यंजित किया है। ब्राह्मण ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण ही श्रेष्ठ नहीं होता, इस भावाभिव्यक्ति के लिए कवि ने यहाँ ध्वनियों के माध्यम से तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। "तुरुक", "तुरुकिनी" शब्दों में भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये गये हैं।

समुंदर लागी आगि, नदियां जलि कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूखां चढ़ि गई।। 1*

यह छन्द उलटबांसी नाम से प्रसिद्ध है। छन्द का अभिधार्थ अटपटा सा लगता है; किन्तु भीतरी अर्थ कुछ और ही है। इसीलिए ऐसे छन्दों को "उलटबांसी" कहा जाता है। ऐसे छन्दों में कवि ने प्रतीक के माध्यम से अपने अकथनीय अनुभव को (रहस्यवाद से सम्बद्ध) व्यक्त किया है। शब्दों का प्रतीकात्मक अर्थ लेने पर छन्द सामान्य बन जाते हैं।

प्रस्तुत छन्द में, "समुंदर" भवसागर के प्रतीक-रूप में, "लागी आगि" भगवान के प्रति विरहाग्नि के प्रतीक-रूप में, "नदियां" विषय-वासना के प्रवाह के प्रतीक-रूप में, "मंछी" आत्मा के प्रतीक-रूप में, "चढ़ि गई" ब्रह्म की ओर अग्रसर होने के प्रतीक-रूप में, और "रूखां" सहस्रार के प्रतीक-रूप में आये हैं। जीव के अन्दर जब भगवान के प्रति प्रेम और ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित हो जाती है तो विषय-वासनायें समाप्त हो जाती हैं तथा आत्मा ब्रह्म में लीन हो जाती है। छन्द का भाव यही है।

1-* क0ग्रं0, सा0 2-54

व्यंजन ध्वनियों की दृष्टि से छन्द का विवेचन द्रष्टव्य है :-

1•कोमलतम ध्वनि- (य=1 र=3 ल=3 स=1 न=1 म=2) =11बार
2•कोमलतर ध्वनि- (क=2 च=1 ग=4 ज=2 द=3 ब=1) =13बार
3•कठोरतर ध्वनि- (ख=2 छ=1 भ=1) = 4बार
4•कठोरतम ध्वनि- (ढ़=1) = 1बार

ध्वनिगत प्रतिशत

1•	कोमलतम ध्वनि	=	37•9
2•	कोमलतर ध्वनि	=	44•8
3•	कठोरतर ध्वनि	=	13•8
4•	कठोरतम ध्वनि	=	3•5

प्रस्तुत छन्द में स्वरों की कुल संख्या 33 है, जिसमें ह्रस्व स्वरों की संख्या 17 और दीर्घ स्वरों की संख्या 16 है । कवि ने आग की विस्तृतता एवं उससे उत्पन्न भयंकरता का द्योतन दीर्घ स्वरों के प्रयोग द्वारा किया है साथ ही ह्रस्व स्वरों द्वारा छन्द को गेय बना दिया है । इससे स्पष्ट है कि साधनात्मक रहस्यवाद की - भूमिकाओं में भी वे भाषा की लयात्मकता व गेयता के प्रति कितने सजग हैं । "रूखा" शब्द के "र" में "ऊ" संवृत स्वर है । इसके उच्चारण में जीभ का पश्च भाग बहुत ऊपर उठ जाता है, जिससे ऊँचेपन की अभिव्यक्ति होती है । इस ध्वनि के माध्यम से वृक्ष की ऊँचाई का भाव व्यंजित हो रहा है । इससे स्पष्ट है कि कबीर की ध्वनियों पर जबरदस्त पकड़ है ।

रांम नांम निज पाया सारा ।अबिरथा झूठ सकल संसारा ।।
हरि उतंग मैं जाति पतंगा ।जंबुक केहरि के ज्यूं संगा ।।
किंचित है सुपिनैं निधि पाई ।हिय न समाइ कहं धरौं लुकाई ।।
हिय न समाइ छोरि नहिं पारा । लागे लोभ न और हकारा ।।
सुमिरत हूं अपनैं उनमांनां । किंचित जोग रांम मैं जांनां ।।
जिहि दुरमति डोलै संसारा ।परे असूझि वार नहिं पारा ।।

अंध भए सब डोलहीं,कोइ न करै बिचार ।
कहा हमार मांनैं नहीं, किमि छूटै भ्रमजार ।। [1*]

उद्धृत छन्द में कबीर कहते हैं कि मैंने राम नाम प्राप्त कर लिया है और संसारी लोग माया के वशीभूत होकर दुःख पा रहे हैं । वे लोगों को माया से विरत होकर भक्ति में रत होने की शिक्षा देते हैं ।

प्रस्तुत छन्द में ध्वनियों की प्रायोगिक स्थिति इस प्रकार है :---

क्रमसंख्या	ध्वनि	आवृत्ति संख्या	वर्ण
1·	अ	4	अ ।
2·	उ	2	उ ।
3·	इ	3	इ ।
4·	ई	2	ई ।
5·	ए	1	ए ।
6·	क	13	क, क, के, के, किं, क, का, का, किं, को, क, क, कि ।
7·	च	3	चि, चि, चा ।

1-* क0ग्रं0, र0 19

8•	छ	2	छो, छू ।
9•	ज	7	ज, जा, जं, जो, जॉ, जि, जा ।
10•	झ	2	झू, झि ।
11•	ट	1	टे ।
12•	ठ	1	ठ ।
13•	ड	2	डो, ओ ।
14•	त	7	तं, ति, तं, त, त, त, ति ।
15•	थ	1	था ।
16•	द	1	दु ।
17•	ध	3	धि, ध, ध ।
18•	न	15	नॉ, नि, नैं, नि, न, न, न, न, नैं, न, नॉ, नॉ, न, न, न ।
19•	प	8	पा, प, पि, पा, पा, प,प,पा ।
20•	ब	4	बि, बू, ब, बि, ।
21•	भ	2	भ, भ ।
22•	म	13	म, म, मा, मा, मि, मॉ, मं, मैं, म, मा, मॉ, मि, म ।
23•	य	4	या, यूं, य, य ।
24•	र	23	रॉ, रा, र, रा, रि, रि, रॉं, रि, रा, र, रा, र, रां, र, रा, रे, र, रा, रे, र, र, र, र ।
25•	ल	6	ल, लु, ला, लो, ले, ल ।
26•	व	1	वा ।
27•	स	13	सा, स, सं, सा, सं, सु, स, स, सु, सं, सा, सू, स ।

28·	ह	15	ह, ह, है, हि, हं, हि, हिं, हं, हूं, हि, हिं, हीं, हा, ह, हीं ।

तालिका के अनुसार प्रथम चार बारंबारता-दृष्टि से अधिक ध्वनियाँ है ; किन्तु चौथी संख्या पर "क", "म", "स" ध्वनियाँ बराबर हैं । अस्तु, "क" ध्वनि को ही चौथे क्रमांक पर रख दिया गया है । इस प्रकार ध्वनियों की बारंबारता की दृष्टि से स्थिति निम्नवत् है -

र	=	23
न	=	15
ह	=	15
क	=	13

बारंबारता की दृष्टि से ध्वनियों का आधिक्य विचारणीय है । इसमें सबसे अधिक आवृत्ति "र" ध्वनि की है । "र" ध्वनि की अधिकता से छन्द में तरलता आ गयी है । कोमलता एवं कठोरता की दृष्टि से ध्वनिगत प्रतिशत इस प्रकार है -

1·	कोमलतम ध्वनि	=	61·2
2·	कोमलतर ध्वनि	=	29·3
3·	कठोरतर ध्वनि	=	6·8
4·	कठोरतम ध्वनि	=	2·7

प्रस्तुत छन्द में कबीर ने 90·5 प्रतिशत कोमल ध्वनियों तथा 9·5 प्रतिशत कठोर ध्वनियों का प्रयोग किया है । छन्द में नासिक्य व्यंजनों एवं संघर्षी ध्वनियों से संगीतात्मकता, स्पर्शी अघोष ध्वनि से स्वच्छता, कोमलता का भाव व्यंजित हुआ है ।

कबीर ने अपने काव्य में ध्वनियों का चयन इस प्रकार किया है कि अर्थ शब्दों से ही नहीं, ध्वनियों से भी मुखर हो उठे हैं। उन्होंने विभिन्न ध्वनियों के माध्यम से शब्दों में नवीन व्यंजना भरने का कार्य किया है।

रहस्यात्मक, ममतामूलक प्रकरण, श्रृंगारिक तन्मयता, योग प्रक्रिया, ज्ञान का उद्बोध एवं आडम्बरों पर प्रहार की अलग-अलग भूमिकाओं में प्रयुक्त छन्दों की स्थिति का मूल्यांकन करने से स्पष्ट है कि कबीर रहस्यात्मक, ममतामूलक प्रकरण एवं श्रृंगारिक तन्मयता की अपेक्षा शेष स्थलों पर कठोर ध्वनियों का व्यवहार अधिक करते हैं; किन्तु प्राधान्य कोमल ध्वनियों का ही रहता है। कोमलता उनके व्यक्तित्व का सहज पक्ष है। उनकी भाषा इस प्रयोग-दृष्टि से प्रभावित होने के कारण वर्णों की नाद-योजना और - लयात्मकता से पूरी तरह प्रभावित है। उनका संत-स्वभाव जब इन पदों की गेयता से जुड़ता है तो भाषा सर्वत्र संगीतात्मक दिखायी पड़ती है। इन पदों की विश्लेषण-प्रक्रिया के आधार पर ध्वनियों का प्रायोगिक प्रतिशत अधोलिखित है :-

1•	कोमलतम ध्वनियाँ	=	47•54
2•	कोमलतर ध्वनियाँ	=	41•79
3•	कठोरतर ध्वनियाँ	=	7• 88
4•	कठोरतम ध्वनियाँ	=	2• 79

ध्वनि-विचलन का व्यंजक प्रयोग

कभी-कभी कवि को अपने विशिष्ट भावों की अभिव्यक्ति के लिए ध्वनि-विचलन करना पड़ता है। कबीर की काव्य-भाषा में ध्वनि-विचलन के सर्जनात्मक प्रयोग मिलते हैं। उदाहरणार्थ-

साधो भगति भेख तैं न्यारी । [1*]

चंदन के ढिग बिरिख जु भेला । बिगरि बिगरि सो चंदन ह्वेला।। [2*]

बिखिया अजहूं सुरति सुख आसा । [3*]

अचरज एक सुनहु रे पंडिआ अब किछु कहत न जाई ।। [4*]

गुर गारडू मिल्यो नहिं कबहूं परस्यो बिख बिकरारा । [5*]

बालू के घरवा महिं बैसे चेतत नाहिं अयांना । [6*]

जन जन को मन राखतो, वेस्वा रहि गई बांझ । [7*]

जब लग हरि प्रगटे नहीं, तब लगि पतङा हाथि । [8*]

कुकड़ी मारे बकरी मारे हक्क हक्क करि बोले । [9*]

बिना मूंड़ का चोरवा, परा न काहू चीन्हि । [10*]

उपर्युक्त छन्दों में कबीर ने "भेष", "वृक्ष", "विष्य", "पंडित", "घर", "वेश्या", "पत्रा" और "चोर" में ध्वनियों के विचलन

1-* कं०ग्रं०, प० 175

2-* कं०ग्रं०, प० 166

3-* कं०ग्रं०, प० 159

4-* कं०ग्रं०, प० 133

5-* कं०ग्रं०, प० 36

6-* कं०ग्रं०, प० 69

7-* कं०ग्रं०, सा० 11-4

8-* कं०ग्रं०, सा० 25-20

9-* कं०ग्रं०, प० 183

10-* कं०ग्रं०, सा० 29-4

से क्रमशः "भेख", "बिरिख", "बिछिया", "पछिआ", "घरवा", "बेस्वा", "पतड़ा", और "चोरवा" का प्रयोग किया है । इस ध्वन्यात्मक विचलन द्वारा उन्होंने इन शब्दों को हेयार्थी बना दिया है तथा तिरस्कारपूर्ण भाव की अभिव्यंजना की है । "विष" एवं "हक" शब्दों में भी ध्वन्यात्मक विचलन द्वारा कवि ने "बिख" एवं "हक्क" का प्रयोग किया है, जिससे क्रमशः विष के जहरीलेपन की अतिशयता, जीव की विवशता एवं पीड़ा की अतिशयता अभिव्यंजित हुई है । यहाँ ध्वनि-विचलन का सर्जनात्मक प्रयोग हुआ है ।

कबीर-काव्य में दूसरे प्रकार का विचलन जहाँ मिलता है, जहाँ कवि ने कोमलता लाने के लिए कठोर ध्वनियों के स्थान पर कोमल ध्वनियों का प्रयोग किया है । कोमलता लाने के लिए उन्होंने अधोलिखित शब्दों में "ण", "श", "ड़", "रु", "ष" ध्वनियों को क्रमशः "न", "स", "र", "र" "स" कर दिया है ।

अवगुन[1*] (अवगुण), आसा[2*] (आशा), केस[3*] (केश), कांकर[4*] (कंकड़), गुन[5*] (गुण), जोरी[6*] (जोड़ी), तरवर[7*] (तरुवर), देस[8*] (देश),

---

1-* क०ग्रं०, प० 37

2-* क०ग्रं०, प० 194

3-* क०ग्रं०, सा० 15-7

4-* क०ग्रं०, सा० 18-9

5-* क०ग्रं०, सा० 6-5

6-* क०ग्रं०, सा० 18-9

7-* क०ग्रं०, प० 112

8-* क०ग्रं०, सा० 17-4

दोस[1*] ॥दोष॥, निरास[2*] ॥निराश॥ प्रान[3*] ॥प्राण॥, साखा[4*] ॥शाखा॥, सीतल[5*] ॥शीतल॥

------ -----

कबीर काव्य में ध्वन्यात्मक विचलन की तीसरी स्थिति छन्द की मात्रा, तुक के लिए मिलती है । इससे कोई अतिरिक्त सौन्दर्य उत्पन्न नहीं होता ; क्योंकि इसका सम्बन्ध काव्य की आत्मा से न होकर छन्द ॥बाह्य॥ से होता है ।

उदाहरणार्थ -

> ओ ओंकार आदि है मूला । राजा परजा एकहि सूला ।।
> हम तुम मांहें एकै लोहू । एकै प्राण बिआपै मोहू ।।
> एकहिं बास रहे दस माला । सूतग पातग एकै बासा ।।
> एकहिं जननि जनौ संसारा । कौंन ग्यांन तैं भएउ निनारा ।।
> बालक ह्वै भग द्वारे आवा । भग भोगन कौं पुरिख कहावा ।।
> भाव भगति सौं हरि न अराधा । जनम मरन की मिटी न साधा[6*] ।।

1-* क0ग्र0, प0 47

2-* क0ग्र0, सा0 11-1

3-* क0ग्र0, प0 104

4-* क0ग्र0, प0 119

5-* क0ग्र0, सा0 9-28

6-* क0ग्र0, र0 1

मोहू (लोहू से तुक)
बासा (मासा से तुक)
निनारा (संसारा से तुक)
कहावा (आवा से तुक)
अराधा (साधा से तुक)

तोरउं न पाती पूजउं न देवा । राम भगति बिनु निहफल सेवा ।[1*]

देवा (सेवा से तुक)

जो जन भाउ भगति कछु जानैं ताकौं अचरजु काहो ।
जैसें जल जलही ढुरि मिलियौ त्यौं ढुरि मिल्यौ जुलाहो ।।[2*]

जुलाहो (काहो से तुक)

कबीर-काव्य का ध्वन्यात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर पता चलता है कि कबीर ने ध्वनियों का चयन या विचलन सर्जनात्मक दृष्टि से किया है ।

------*-*---*-*---*-*----

0
000
0

1-* क०ग्रं०, प० 189

2-* क०ग्रं०, प० 200

*
अध्याय- 8
*

*
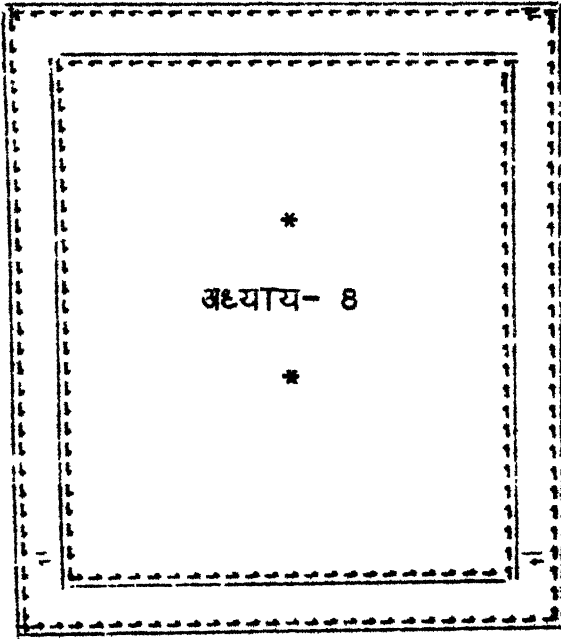
उपसंहार

*

कबीर ने मानवता के जिन मूल्यों की स्थापना की वे आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं । पूरे भक्तिकाल में कबीर जैसा महिमा-मंडित एवं प्रखर व्यक्तित्व लेकर कोई आविर्भूत नहीं हुआ । इस महान व्यक्तित्व की अमिट छाप उनकी शैली पर भी पड़ी ।

शैली अपने व्यापकतम रूप में किसी भी कार्य के करने का विशिष्ट ढंग है; किन्तु भाषिक सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि भाषिक अभिव्यक्ति का वह विशिष्ट ढंग जो मुख्यतः चयन, विचलन, समानांतरता एवं अप्रस्तुत-विधान पर आधारित होता है, शैली कहलाता है । इसी का वैज्ञानिक विवेचन शैली-विज्ञान है । शैली-विज्ञान इस कार्य में भाषा को आधार इसलिए बनाता है कि वह साहित्य को शाब्दिक कला मानता है । शैलीविज्ञान साहित्य को देखने-परखने की एक दृष्टि है जो शैली के साक्ष्य पर एक ओर साहित्यिक कृति की संरचना और गठन पर प्रकाश डालती है तो दूसरीओर कृति का विश्लेषण करते हुए उसमें अन्तर्निहित साहित्यिकता का उद्घाटन करती है ।

कबीर की शैली उनके व्यक्तित्व से पूरी तरह प्रभावित है । उनके व्यक्तित्व की सहजता, अनगढ़ता, ओजस्विता, अक्खड़ता की छाप उनकी शैली पर पड़ी है । व्यक्तित्व के अनुरूप विभिन्न विषयों से सम्बन्धित छन्दों में उनकी अभिव्यक्ति सहज, सरल एवं प्रखर है । जब वे धार्मिक बाह्याडम्बर एवं सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करते हैं, तब उनके आक्रोश का स्वर प्रखर हो जाता है और उनकी शैली व्यंग्यपूर्ण हो उठती है । ऐसे स्थलों के आधार पर उन्हें हिन्दी का सबसे बड़ा व्यंग्यकार कहा जा सकता है । इन व्यंग्यों के आधार रूप में कभी वे प्रश्न करते हैं, कभी

विरोधी भावों की संयोजना करते हैं तथा कभी प्रश्नों में ही व्यंग्य भरते हैं । छन्दों में वे व्यंग्य तर्क के आधार पर प्रस्तुत करते हैं ।

चयन काव्य-शैली का एक प्रमुख अंग है । कबीर में शब्द-चयन की अद्भुत क्षमता है । यह चयन कबीर-काव्य में स्थिति-भेद, प्रसंग-भेद, अभिव्यक्ति उद्देश्य से भिन्न-भिन्न है । शब्दों के अर्थ में सूक्ष्म अन्तर कबीर की आँखों से ओझल नहीं हो पाता । इसके प्रति वे सजग हैं । "उपजना" और जनमना" के अर्थ की सूक्ष्मता वे समझते हैं। वे मानते हैं कि जिस मनुष्य के हृदय में प्रेम नहीं है, उसका जीवन वनस्पतियों से बढ़कर नहीं है । ऐसे प्रसंगों में "जनमना" के स्थान पर "उपजना" का चयन उनकी कवि-शक्ति का द्योतक है । वे शब्द- चयन करते समय प्रकरण उपयुक्तता का भी ध्यान रखते हैं और उसी के अनुकूल शब्द के विभिन्न पर्यायों में से शब्द-विशेष को ही चुनते हैं । उनके काव्य में मुहावरा एवं लोकोक्ति का चयन उनकी शैली की तीव्रता, सहजता, स्वाभाविकता एवं आयासहीनता है ।

कबीर ने अपने काव्य में विचलन का साभिप्राय प्रयोग किया है । वे अपरिहार्य स्थितियों में ही सामान्य भाषा के नियम-बंधनों को तोड़ते हैं । उनके इन विचलनों से कथ्य को बल मिलता है । अपने काव्य में जब वे मन को मूड़ने की बात करते हैं तो विचलन सार्थक हो उठता है। वे बालों के मूड़ने के सादृश्य पर ही मन को कर्म-रूप में प्रयुक्त करते हैं तथा उसके साथ "मूड़ना" क्रिया प्रयुक्त करते हैं । बाल मूड़ने के प्रसंग में "मन" (संज्ञा) शब्द का विचलन अच्छे प्रयोग का परिचय देता है । इसके माध्यम से वे कहना चाहते हैं कि जिस प्रकार बालों को मूड़कर समाप्त कर दिया जाता है, उसकी बाढ़ रोक दी जाती है; उसी प्रकार मन की विषयवासना की प्रवृत्ति को रोक दिया जाय । यह विचलन कवि

की शैली का ही एक अंग है, जो उसके कथन की विशिष्टता को उजागर करता है । कवि ने अन्य स्थलों पर क्रिया-विचलन, वाग्भाग-विचलन, मानक-विचलन, क्रम-विचलन, सहप्रयोग-विचलन: मानवीकरण का प्रयोग किया है, जिसकी छटा देखते ही बनती है । ये विचलन उनकी शैली विशिष्टता के परिचायक हैं ।

कवि की शैलीगतविशेषता के रूप में अप्रस्तुत-विधान भी द्रष्टव्य है, जहाँ कवि ने इसके माध्यम से सुन्दर अभिव्यक्ति की है । उन्होंने अप्रस्तुतों का चयन लोक जीवन से किया है, इसीलिए वे बड़े व्यंजक, सशक्त एवं प्रभावशाली हैं । जब वे "आटा" और "नमक" अप्रस्तुत प्रयुक्त करते हैं, वहाँ इन अप्रस्तुतों के माध्यम से उन्होंने रीतिबोधक क्रियाविशेषण का निर्माण किया है । वहाँ आटा में नमक के मिलने का पूरा बिम्ब सामने प्रस्तुत हो जाता है । इसके द्वारा भाषा में एक बिम्बात्मकता आ गयी है, कथ्य को बल मिला है एवं अभिव्यक्ति का सौन्दर्य द्रष्टव्य है । उनके कथन की यह शैली अपना अलग महत्त्व रखती है । इसी प्रकार वे क्रिया, अलंकार, मानवीकरण, अन्योक्ति, प्रतीक और मुहावरे के रूप में अप्रस्तुत-विधान का प्रयोग करते हैं । जहाँ उनकी अभिव्यक्ति का अपना सौष्ठव है ।

शैली की एक दूसरी विशेषता के रूप में वे समानांतरता को अपनाते हैं । इस समानांतरता के द्वारा संगीतात्मकता उत्पन्न हुई है । संगीतात्मकता काव्यभाषा का बहुत बड़ा गुण है । काव्यभाषा द्वारा व्यक्त भाव केवल सहृदय के हृदय को आन्दोलित करता है; किन्तु संगीतात्मक गीत असहृदय व्यक्तियों, पशु-पक्षियों को भी आनंद-विभोर करता है । इसीलिए वे अपने काव्य में ध्वनीय एवं शब्दीय समानांतरता

के अन्तर्गत क्रमशः ध्वनि, विशेषकर शब्दों की पुनरावृत्ति करते हैं। इससे वाक्य में समान या विरोधी संतुलन उत्पन्न हुआ है। ऐसे प्रयोग और भी प्रभावशाली हो गये हैं, जहाँ उनका सम्बन्ध शब्द-भावों के साथ हो गया है। जब वाक्यस्तरीय समानांतरता के अन्तर्गत वे विरोधी शब्दों का प्रयोग करते हैं तो वे संरचना-स्तर पर समान रहते हुए भी अर्थ-स्तर पर विरोधी भाव व्यक्त करते हैं और वाक्य द्योतक संगीत उत्पन्न होता है। कवि इन विरोधी भावों से अपने कथ्य को बड़े ही सशक्त रूप में रेखांकित करता है। अर्थीय समानांतरता के अन्तर्गत अर्थ-स्तर पर कई अर्थों का वे समानांतर प्रयोग करते हैं। यह समानांतरता उनके काव्य में कई रूपों में मिलती है- प्रथम समानार्थी शब्दों के प्रयोग में, द्वितीय अर्थ की दृष्टि से समवर्गीय शब्दों के प्रयोग में तथा तृतीय श्लेष के रूप में -जहाँ एकाधिक अर्थ साथ-साथ चलते हैं।

कबीर ने अपनी काव्यभाषा में ध्वनियों का चयन उनके प्रभाव तथा विशिष्ट भावों से उनके सम्बद्ध होने के आधार पर किया है। जब वे ज्ञान की भूमिका में आँधी का रूपक प्रस्तुत करते हैं, तब वे दीर्घ स्वरों एवं कठोर व्यंजन ध्वनियों के प्रयोग से आँधी की विशालता एवं भयंकरता का भाव ध्वनियों के माध्यम से व्यक्त कर देते हैं। रहस्यात्मक, ममतामूलक प्रकरण, श्रृंगारिक तन्मयता, योग-प्रक्रिया, ज्ञान का उद्घोष एवं आडम्बरों पर प्रहार की अलग-अलग भूमिकाओं में प्रयुक्त छन्दों की स्थिति का मूल्यांकन करने से स्पष्ट है कि कबीर रहस्यात्मक, ममतामूलक प्रकरण एवं श्रृंगारिक तन्मयता की अपेक्षा शेष स्थलों पर कठोर ध्वनियों का प्रयोग करते हैं; किन्तु अधिकतम कोमल ध्वनियों का ही व्यवहार करते हैं। कोमलता उनके व्यक्तित्व का सहज पक्ष है। उनकी भाषा इस भावना से प्रभावित होने के कारण वर्णों की नाद-योजना एवं

लयात्मकता से पूरी तरह प्रभावित है । उनका संत स्वभाव जब इन पदों की गेयता से जुड़ता है तो भाषा सर्वत्र संगीतात्मक दिखायी पड़ती है । विश्लेषण-प्रक्रिया के आधार पर इन पदों में कोमल ध्वनियों का प्रायोगिक प्रतिशत अत्यधिक मिलता है । कबीर ने ध्वनियों के प्रयोग की दूसरी स्थिति विचलन के स्तर पर की है । वे ध्वनियों के विचलन से शब्दभावों की मुखरता व्यक्त करते हैं तथा दूसरे स्तर पर इस विचलन द्वारा वे कोमल भाव व्यक्त करते हैं । ध्वनियों की तीसरी स्थिति छन्द की मात्रा या तुक की है ।

कबीर की काव्यभाषा स्वच्छ, तरल, प्रांजल, महिमामंडित एवं गाम्भीर्य से परिपूर्ण है । उनकी शैली उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही अप्रतिम है । उनका व्यक्तित्व एवं शैली कागज के दोनों तरफ के दो सतहों की भाँति हैं ।

कबीर के व्यक्तित्व की गरिमा उनकी वे सम्पूर्ण मान्यताएँ एवं शिल्पजन्य सौन्दर्य हैं, जहाँ एक ओर निश्छल सरलता, सहज भावों का उद्रेक बनकर गतिमय है, दूसरी ओर मानव मात्र के कल्याण की कामना व्यक्त करती हुई उनकी करुणा रागमयी बनी है । मानव मात्र में मानव द्वारा ही निर्मित अवरोधक सामाजिक मूल्य झंझावात बनकर उनके सीधे व्यक्तित्व को चुनौती देते हैं तो अपनी शैली में कबीर उखड़े -उखड़े लगने लगते हैं । उन्होंने कुछ पाया है, जो पाया है- वह ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों, पण्डितों, कर्मकाण्डियों, धर्मावलम्बियों किसी को नहीं मिला है, यह आत्माभिमान या आत्मगौरव कभी-कभी उनकी कविता को अभिव्यक्ति के एक नये माध्यम से जोड़ता है और उनकी शैली उपहासपरक, उच्छेदपरक, व्यंग्यपरक, आक्रामक, कभी-कभी हिंस्र हो उठती है । ऐसे प्रकरणों में पदों में गूढ़ोक्तियाँ व्यक्त करते हुए कबीर चुनौती देते हैं, जो

उनके पदों के अर्थ खोल दे, वह उनका गुरु है । ठीक इसके समानांतर अपनी करुण, विराट दृष्टि को अपनाकर चलने वाली उनकी शैली उन्हें इतना विनम्र कर देती है कि वे अपने आप को "राम का कूता" तक कह लेते हैं - एक ओर निश्छल समर्पण की ललित कल्पनाएं उनकी लयात्मक अभिव्यक्ति हैं तो दूसरी ओर ज्ञानोद्रेक के प्रखर क्षण तथा तदनुरूप उदात्त काव्यभाषा का संतुलन विद्यमान है । रामनाम की महत्ता लेकर अपनी कविता में पुनरुक्ति शैली को उन्होंने एक नया जामा पहनाया । वे अलग-अलग छन्दों में उसी रामनाम को अलग-अलग शैलियों से प्रस्तुत करते हैं, लेकिन अभिव्यक्ति एक ही है । एक तरफ वे परम्परागत शास्त्रीय ज्ञान से हटकर चलते हैं; लेकिन विवेचन में शास्त्रीय मर्यादा अंकित करने में कहीं नहीं चूकते ।

कबीर अन्योक्तियों के कवि हैं । व्यंजना उनकी काव्यभाषा का सहज भाग है । एक तरफ खरी सपाटबयानी दूसरी तरफ गूढ़ अर्थवत्ता एवं व्यंजकता उनकी काव्याभिव्यक्ति को मणिकांचन योग देकर श्रेष्ठता प्रदान करती है । कबीर को अपढ़, गंवार, कवित्व-प्रतिभा-रहित और कभी-कभी सामान्य स्तर का कवि मानने का प्रयत्न समीक्षा की लम्बी मान्यताओं में हुआ है, लेकिन उनकी काव्यभाषा में ध्वनियों के प्रयोग, पदबन्धों की सीमाएं, शब्द-सम्पदा का वैशिष्ट्य और शैली की चयन, विचलन, समानांतरता की स्थितियां निर्विवाद रूप से उन्हें श्रेष्ठ कवि सिद्ध करती हैं । भाषा पर निश्चित रूप से उनका पूर्ण अधिकार है । अपनी शैली की कोमल योजना के कारण वे भक्तिकाल के अन्य कवियों की तरह सरस अनुभूतियों के कवि हैं । यह बात अवश्य है कि जीवन के प्रति जो खुली दृष्टि, सामाजिक सन्दर्भों के प्रति जो अवधारणा उनके मन में है, उसके कारण वे अक्खड़ भी हैं, फक्कड़ भी । यह बेपरवाही उनकी शैली का

सबसे बड़ा गुण है । वे न तो शास्त्र की परवाह करते हैं, न व्याकरण की, न ही प्रौढ़ोक्ति मर्यादा की, न ही परम्परा की । वे मस्तमौला हैं और उनकी यह मस्ती उनके काव्य वैशिष्ट्य का समान्तर रूप में उनकी काव्याभिव्यक्ति का प्रमुख भाग है ।

भाषा का धनी भक्तिकाल का प्रसिद्ध कवि जायसी "अखरावट" में आदर से कबीर का स्मरण करना नहीं भूलता । जायसी का सात्विक संस्कार जब अपने मन के शैतान का मूल्यांकन करता है तो उसे जुलाहा कबीर याद आता है :-

ना नारद तब रोइ पुकारा ।
एक जुलाहे सों मैं हारा ।।

यह जुलाहा अपनी प्रखर अभिव्यक्ति-दृष्टि और काव्य-योजना के कारण अपने सम्पूर्ण परवर्ती इतिहास के लिए एक चुनौती है ।

***

0
000
00000
000
0

समाप्त

: परिशिष्ट :

क- आधार ग्रन्थ -

कबीर-ग्रंथावली
सम्पादक- डॉ० पारसनाथ तिवारी,
हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय,
प्रयाग
प्रथम संस्करण, 1961 ई०

ख- सहायक ग्रन्थ -

[1] हिन्दी

1. कबीर-साहित्य की परख :
आचार्य परशुराम चतुर्वेदी,
भारती भंडार, लीडर प्रेस,
इलाहाबाद,
तृतीय संस्करण, सन् 1972

2. कबीर की विचार-धारा :
डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ;
साहित्य निकेतन कानपुर -1
पंचम संस्करण, 1981 ई०

3. कबीरदास:
डॉ० कान्तिकुमार,
किताब घर, ग्वालियर,
संस्करण, सन् 1972 ·

4. हिन्दी साहित्य की भूमिका :
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी,
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली पटना
संस्करण, सन् 1979

5. कबीर : एक अनुशीलन :
डॉ० रामकुमार वर्मा
साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड
के०पी० कक्कड़ रोड, इलाहाबाद- 211003
प्रथम संस्करण, सन् 1983

6. कबीर की भाषा:
डॉ० माताबदल जायसवाल;
कैलाश ब्रदर्स, इलाहाबाद
संस्करण : सन् 1964

7. नाथ -सम्प्रदाय :
हजारी प्रसाद द्विवेदी,
लोकभारती प्रकाशन,
15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1
तृतीय संस्करण, सन् 1981

8. कबीर का रहस्यवाद :
डॉ० रामकुमार वर्मा,
साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड
इलाहाबाद-3
ग्यारहवां संस्करण, सन् 1972

9. हिन्दी-साहित्य का आदिकाल :
डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी,
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद,
पटना-4
चतुर्थ संस्करण, सन् 1980

10. कबीर मीमांसा :
डॉ० रामचन्द्र तिवारी,
लोकभारती प्रकाशन,
15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1
प्रथम संस्करण, सन् 1976

11. हिन्दी साहित्य का इतिहास :
सम्पादक : डॉ० नगेन्द्र,
सह सम्पादक: डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
संस्करण, सन् 1980

12. कबीर :
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी,
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पटना
संस्करण, सन् 1980

13. कबीर और कबीर पंथ :
केदारनाथ द्विवेदी,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
1965 ई०

14. संत कबीर :
सम्पादक रामकुमार वर्मा
साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड,
इलाहाबाद, 1957 ई०

15. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय :
पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल,
अनु० परशुराम चतुर्वेदी,
अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 2000 वि०

16. हिन्दी साहित्य का इतिहास :
रामचन्द्र शुक्ल,
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 2007 वि०

17. उत्तर भारत की संत-परंपरा- परशुराम चतुर्वेदी,
भारती भंडार,
प्रयाग, सं० 2008 वि०

18. कबीरदास :
नरोत्तमदास स्वामी,
हिन्दी-भवन,
लाहौर, सं० 1997 वि०

19. कबीर-साहित्य का अध्ययन-
पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव,
बनारस, 2008 वि०

20. कबीर-वाणी-सुधा :
डॉ० पारसनाथ तिवारी,
राका प्रकाशन, इलाहाबाद
चतुर्थ संस्करण : 1978 ई०

21· योग-प्रवाह :
डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल,
काशी विद्यापीठ, बनारस, सं० 2003 वि०

22· सबद :
डॉ० जयदेव सिंह
डॉ० वासुदेव सिंह
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
प्रथम संस्करण : सन् 1981

23· काव्यशास्त्र :
डॉ० भगीरथ मिश्र
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
षष्ठ संस्करण, सन् 1980

24· कबीर वाणी पीयूष :
डॉ० जयदेव सिंह
डॉ० वासुदेव सिंह
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
प्रथम संस्करण, 1976 ई०

25· भाषाविज्ञान :
डॉ० भोलानाथ तिवारी
किताब महल, इलाहाबाद
तेरहवाँ संस्करण, 1978 ई०

26· शैली :
डॉ० रामचन्द्र प्रसाद,
बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
कदमकुआँ, पटना-3
प्रथम संस्करण : 1973 ई०

27. संरचनात्मक शैलीविज्ञान :
डॉ० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव,
आलेख प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण : सन् 1980

28. शैलीविज्ञान
डॉ० सुरेश कुमार
दि मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड
नई दिल्ली बम्बई कलकत्ता मद्रास
प्रथम संस्करण : 1977 ई०

29. रीतिविज्ञान :
विद्यानिवास मिश्र,
राधाकृष्ण प्रकाशन, 2, अंसारी रोड
दरियागंज, दिल्ली 110006
प्रथम संस्करण, 1973 ई०

30. शैलीविज्ञान:
डॉ० भोलानाथ तिवारी,
शब्दकार, 2203, गली डकौतान,
तुर्कमान गेट, दिल्ली-6
प्रथम संस्करण, 1977 ई०

31. व्यावहारिक शैलीविज्ञान :
डॉ० भोलानाथ तिवारी,
शब्दकार 2203, गली डकौतान तुर्कमान गेट,
दिल्ली -110006
प्रथम संस्करण : 1983 ई०

32. भाषाविज्ञान की अधुनातन प्रवृत्तियाँ और हिन्दी भाषा शिक्षण :
शिवेन्द्र किशोर वर्मा
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा
प्रथम संस्करण: सन् 1973

33. शैली और शैलीविज्ञान :
सम्पादक सुरेश कुमार
रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव,
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान; आगरा
प्रथम संस्करण, सन् 1976

34. भारतीय शैलीविज्ञान :
डॉ० सत्यदेव चौधरी,
अलंकार प्रकाशन 666, झील, दिल्ली
प्रथम संस्करण : 1979

35. भाषाविज्ञान की भूमिका :
प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा,
राधाकृष्ण प्रकाशन,
2-अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
पंचम संस्करण, सन् 1978

36. मानक हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण :
डॉ० माताबदल जायसवाल,
महामति प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण, सन् 1979

32· भाषाविज्ञान की अधुनातन प्रवृत्तियाँ और
हिन्दी भाषा शिक्षण :
शिवेन्द्र किशोर वर्मा
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा
प्रथम संस्करण: सन् 1973

33· शैली और शैलीविज्ञान :
सम्पादक सुरेश कुमार
रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव,
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान; आगरा
प्रथम संस्करण, सन् 1976

34· भारतीय शैलीविज्ञान :
डॉ० सत्यदेव चौधरी,
अलंकार प्रकाशन 666, झील, दिल्ली
प्रथम संस्करण : 1979

35· भाषाविज्ञान की भूमिका :
प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा,
राधाकृष्ण प्रकाशन,
2-अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
पंचम संस्करण, सन् 1978

36· मानक हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण :
डॉ० माताबदल जायसवाल,
महामति प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण, सन् 1979

37. शब्दों का जीवन :
डॉ० भोलानाथ तिवारी,
राजकमल प्रकाशन, प्रा०लि०,
8, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली
द्वितीय संस्करण : 1977 ई०

38. शैलीविज्ञान :
डॉ०नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
23 दरियागंज, नयी दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1976 ई०

39. शब्द शक्ति और ध्वनि सिद्धान्त :
डॉ० सत्यदेव चौधरी, अलंकार प्रकाशन झील,
दिल्ली-51

40. शैलीविज्ञान की रूपरेखा
डॉ० कृष्णकुमार शर्मा,
संघी प्रकाशन, जयपुर
प्रथम संस्करण, सन् 1974

41. आधुनिक भाषाविज्ञान :
डॉ० भोलानाथ तिवारी
लिपि प्रकाशन, ई-10/4, कृष्णनगर,
दिल्ली- 110051
प्रथम संस्करण: सन् 1978

48. शैलीविज्ञान के आलोचना के प्रतिदर्श :
डॉ० कृष्णकुमार शर्मा,
संघी प्रकाशन, जयपुर
प्रथम संस्करण : सन् 1978

49. हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास :
डॉ० उदयनारायण तिवारी,
भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण : संवत् 2018

50. शब्दों का अध्ययन :
डॉ० भोलानाथ तिवारी,
शब्दकार, तुर्कमानगेट, दिल्ली
प्रथम संस्करण : सन् 1969

(2) अंग्रेजी

1. स्टाइलिस्टिक्स :
जी० डब्ल्यू० टरनर, पेन्गुइन,
प्रथम संस्करण, 1973 ई०

2. स्टाइल :
आर० वाल्टर,
एडवार्ड अरनोल्ड,
13वाँ संस्करण, सन् 1918

3. स्टाइल एण्ड स्ट्रक्चर इन लिटरेचर :
आर० फाउलर,
ब्लेकवेल, आक्सफोर्ड,
प्रथम संस्करण : सन् 1975

4. स्टाइल एण्ड स्टाइलिस्टिक्स :
जी हक, रौतलेज एण्ड केजन पाल, लन्दन
प्रथम संस्करण : 1969

—*—

0
000
00000
000
0

:0: